कक्षा 11

vfuok;l fgnh & f}rh;

कथा धारा

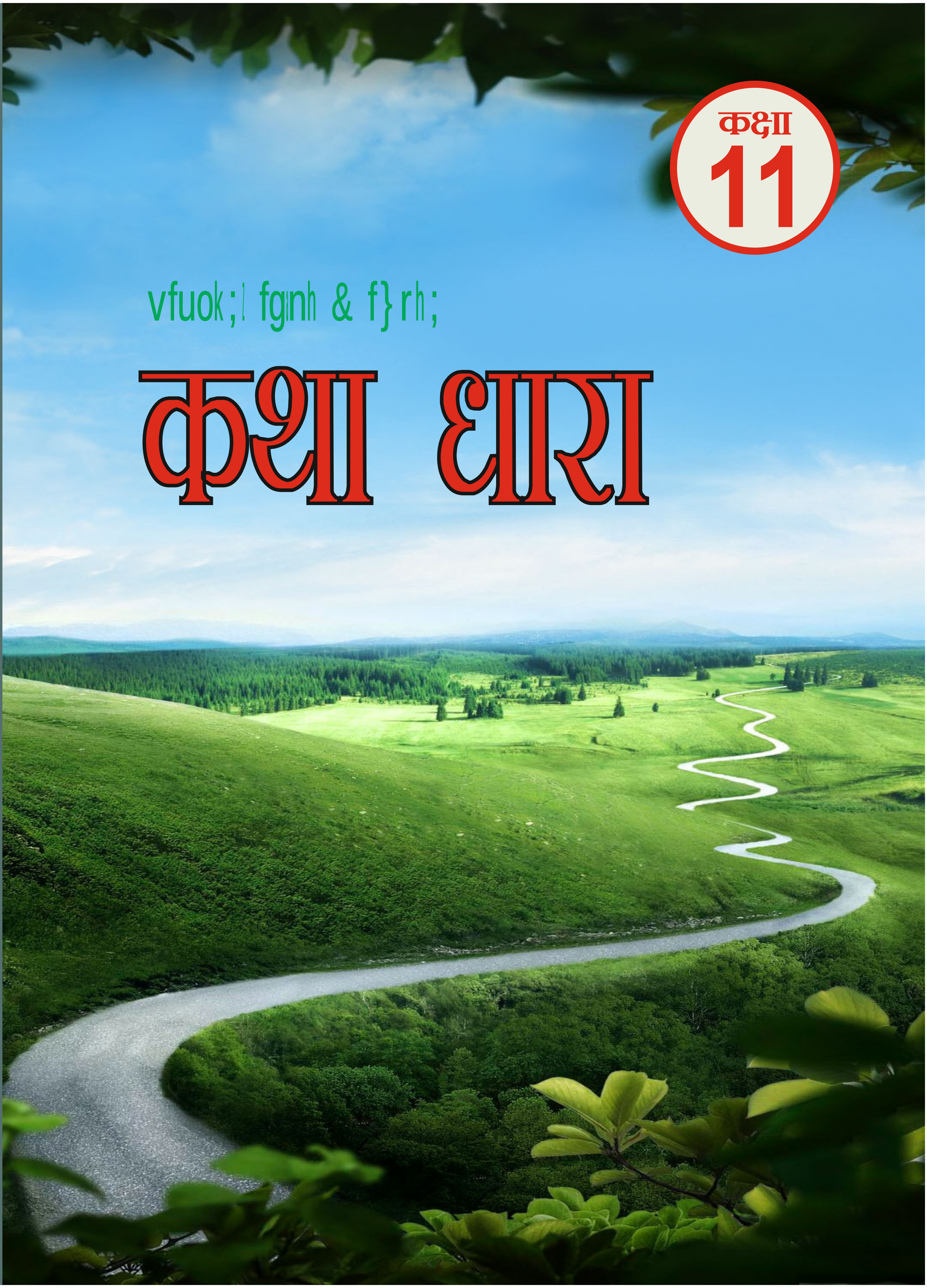

कक्षा 11

कथा धारा

कथा धारा

कक्षा–11 (अनिवार्य हिन्दी, द्वितीय पुस्तक)

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक – कथा धारा कक्षा–11 (अनिवार्य हिन्दी, द्वितीय पुस्तक)

संयोजक :– डॉ॰ दीपिका विजयवर्गीय, सह आचार्य, हिन्दी–विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

संपादकगण :–
1. डॉ॰ धर्मनारायण भारद्वाज, प्रधानाचार्य
   रा.आ.उ.मा. विद्यालय, बड़ोली माधोसिंह,
   निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़)
2. डॉ॰ बुद्धमति यादव, व्याख्याता हिन्दी–विभाग
   गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर
3. अशोक कुमार शर्मा, व्याख्याता
   राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, किशनगढ़ (अजमेर)
4. भरत शर्मा, व्याख्याता
   राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, माणक चौक, जयपुर

आभार

सम्पादक मंडल एवं माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर उन सभी लेखकों का आभार एवं कृतज्ञता व्यक्त करता है जिनके अमूल्य सृजन एवं विचार इस पुस्तक में सम्मिलित किये गये हैं।

यद्यपि इस पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री का स्वत्वाधिकार का ध्यान रखा गया है फिर भी यदि कुछ अंश रह गये हों तो यह सम्पादक मंडल इसके लिए खेद व्यक्त करता है। ऐसे स्वत्वाधिकारी से सूचित होने पर हमें प्रसन्नता होगी।

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पुस्तक – **कथा धारा** कक्षा–11

संयोजक :– डॉ. आशीष सिसोदिया, सहायक आचार्य
हिंदी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

सदस्य :–

1. डॉ. दीपिका विजयवर्गीय, सह आचार्य हिन्दी विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
2. डॉ. नवीन नन्दवाना, सहायक आचार्य हिन्दी विभाग
   मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
3. श्री संजय कुमार शर्मा
   डाइट , हनुमानगढ़
4. श्री रमाशंकर शर्मा, व्याख्याता
   राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, धौलपुर
5. श्री अशोक कुमार शर्मा, वरिष्ठ अध्यापक
   राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, रलावता, अजमेर
6. श्री महेशचन्द्र शर्मा, वरिष्ठ अध्यापक
   राजकीय वरिष्ठ उपाध्याय संस्कृत विद्यालय, कुण्डगेट, सावर, अजमेर

आमुख

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर की ग्यारहवीं कक्षा की हिन्दी (अनिवार्य) विषय की पूरक पुस्तक (द्रुत–पाठ) के रूप में कथा–धारा तैयार की गई है। प्रस्तुत कहानी संग्रह में कहानियों का चयन करते समय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के निर्देशों का सम्यक् रूप से पालन किया गया है।

संकलित कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं को साकार रूप देने वाली हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जहाँ संवेदनाओं का स्थान बौद्धिकता ने ले लिया है वहाँ कहानियों के उदात्त चरित्र व कथानक के माध्यम से मनुष्य के अन्तःकरण में भावनाएँ पुनः स्थान प्राप्त कर सकेंगी।

प्रस्तुत पुस्तक कथा–धारा में संगृहीत कहानियाँ विद्यार्थियों के चरित्र व व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होंगी, निराशा से परे आशावादिता और पूर्ण विश्वास का भाव जाग्रत करने, परिवार को जोड़ने व प्रेम–प्रीति का संदेश देने के साथ ही भारतीय संस्कृति और परम्पराओं के निर्वहन में सहायक होंगी, राजस्थान के गौरवपूर्ण इतिहास की झलक देने तथा उससे आत्मीय संबंध बनाने में सहायक होंगी, जीवन की सार्थक सच्चाइयों को समझने की सोच तथा नवीन जीवनानुभवों का परिचय देंगी, मातृभूमि के प्रति त्याग और बलिदान की भावना तथा मातृभूमि के मान–सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा आदि भावों का निश्चित ही विकास करेंगी और विद्यार्थियों के जीवन–पथ को सुगम बनाने में उपयोगी सिद्ध होंगी ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रत्येक कहानी की मूल संवेदना तथा विद्यार्थियों के स्तरानुसार प्रश्नों की रचना की गई है जिससे विद्यार्थियों में हिन्दी के प्रति रुचि और जिज्ञासा जाग्रत होगी तथा साहित्यिक लगाव का सृजन होगा।

कथा–धारा में कहानियों के संकलन में पूर्ण सतर्कता बरती गई है फिर भी पुस्तक की कमियों तथा परिष्कार हेतु आपके सकारात्मक सुझावों का स्वागत है।

अंत में पुस्तक में प्रकाशित सभी कहानीकारों के प्रति आभार एवं साधुवाद।

—सम्पादकगण

अनिवार्य हिंदी पाठ्यक्रम

विषय कोड : 01

समय 3.15 घंटे **पूर्णांक :100**

अधिगम क्षेत्र	**अंक**
अपठित बोध	10
व्यावहारिक व्याकरण एवं रचना	20
प्रज्ञा प्रवाह–आधार पुस्तक	40
कथा धारा–पूरक पुस्तक	15
संवादसेतु	15

खण्ड–1

अपठित बोध	**10**
(क) अपठित गद्यांश	05
(ख) अपठित पद्यांश	05

खण्ड–2

व्यावहारिक व्याकरण एवं रचना	**20**
अविकारी शब्द	02
शब्द विचार (क)	02
वाक्यांश के लिए एक शब्द, समानार्थी शब्द	02
वाक्य विचार	02
विराम चिह्न	02
संक्षिप्तीकरण एवं पल्लवन	03
निबन्ध लेखन (विकल्प सहित)	07

खण्ड–3

प्रज्ञा प्रवाह– (आधार पुस्तक)	**40**
(क) 1 व्याख्या गद्य भाग से (विकल्प सहित)	1 X 5 = 5
(ख) 1 व्याख्या पद्य भाग से (विकल्प सहित)	1 X 5 = 5

(ग) 2 निबन्धात्मक प्रश्न	2 X 5 = 10
(1 प्रश्न गद्य से एवं 1 प्रश्न पद्य भाग से विकल्प सहित)	
(घ) 4 लघूत्तरात्मक प्रश्न (2 गद्य एवं 2 पद्य भाग से)	4 X 3 = 12
(ड) किसी एक कवि या लेखक का परिचय	1 X 4 = 4
(कवि एवं लेखक विकल्प सहित)	
(च) 2 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (1 गद्य एवं 1 पद्य भाग से)	2 X 2 = 4

खण्ड–4

कथा धारा –(पूरक पुस्तक)	**15**
(क) 1 निबन्धात्मक प्रश्न (विकल्प सहित)	1 X 6 = 6
(ख) 4 लघूत्तरात्मक प्रश्नों में से 3 प्रश्न)	3 X 3 = 9

खण्ड–5

संवाद सेतु	**15**
(क) पत्रकारिता का इतिहास (1 प्रश्न)	1 X 3 = 3
(ख) जन संचार के परंपरागत माध्यम (1 प्रश्न)	1 X 3 = 3
(ग) जन संचार के आधुनिक माध्यम (1 प्रश्न)	1 X 3 = 3
(घ) प्रयोजनमूलक लेखन	1 X 3 = 3
(व्यावहारिक लेखन पर आधारित 1 प्रश्न)	
(ड) व्यावसायिक एवं कार्यालयी लेखन और प्रक्रिया	1 X 3 = 3
(व्यावहारिक लेखन पर आधारित 1 प्रश्न)	

निर्धारित पुस्तकें –

1. **प्रज्ञा प्रवाह** – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर।
2. **कथा धारा** – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर।
3. **संवादसेतु** – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर।

अनुक्रम

		कहानीकार	पृष्ठ संख्या
1.	हिन्दी कहानी की विकास यात्रा		1—4
2.	बड़े घर की बेटी	— प्रेमचन्द	5—12
3.	खेल	— जैनेन्द्र कुमार	13—18
4.	शरणदाता	— अज्ञेय	19—28
5.	देशभक्त	—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'	29—34
6.	ताई	—विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'	35—43
7.	एटम बम	—अमृतलाल नागर	44—50
8.	जैसलमेर की राजकुमारी	—आचार्य चतुरसेन शास्त्री	51—55

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा

स्वरूप और परिभाषा–

कहानी कहना–सुनना मनुष्य की नैसर्गिक आवश्यकता रही है तथा इसके माध्यम से उसने अपनी सामाजिकता का विकास भी किया है क्योंकि कहानी ने यदि उसका मनोरंजन किया है तो उसे जीवनोपयोगी उपदेश भी दिया है। कहानी वाचिक परम्परा की देन है किन्तु जब हम कहानी के आधुनिक स्वरूप को देखते हैं तो पाते हैं कि कहानी घटनाओं का संयोजन मात्र ही नहीं है बल्कि मानव जीवन की जटिलताओं, विद्रूपताओं तथा उसके अन्तर्विरोधों को व्यक्त करने का सशक्त साहित्यिक रूप है। इसलिए आज भी यह एक लोकप्रिय विधा है।

भारतवर्ष में कहानी वैदिक काल से चली आ रही है। प्राचीन काल में कहानी गद्य एवं पद्य दोनों रूपों में मिलती हैं। महाभारत छोटी–छोटी कहानियों का भण्डार हैं। इसी प्रकार जैन धर्म के 'नन्दी सूत्र' भी कहानियों के भण्डार हैं। कहानी के प्रारम्भिक युग में आचार्य गुणाढ्‌य की 'बृहत्कथा' का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस ग्रन्थ में सरस रोचक कहानियाँ संगृहीत हैं। संस्कृत साहित्य की कहानी परम्परा में 'कथासरित्सागर', 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' कहानी कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। विश्व भर के विद्वानों ने इन्हें सर्वश्रेष्ठ कथाशैली के रूप में स्वीकार किया है। इसी कारण विश्वभर की लगभग सभी भाषाओं में इनका अनुवाद हो चुका है।

भारत में अरबों के प्रवेश के साथ ही अरब की 'अरेबियन नाइट्स' के द्वारा कहानियों का दूसरा युग प्रारम्भ हुआ। इस युग में आध्यात्मिक प्रेम की कथाएँ लिखी गईं, इनके अतिरिक्त हास्य–विनोद की कहानियाँ (बीरबल विनोद) आदि लिखी गईं।

सन् 1803 में मुंशी इंशा अल्लाह खाँ द्वारा 'रानी केतकी की कहानी' लिखी गई। सन् 1900 में आधुनिक हिन्दी कहानी के मौलिक लेखन का श्रीगणेश प्रयाग से प्रकाशित 'सरस्वती पत्रिका' से हुआ। इस पत्रिका में किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' प्रकाशित हुई जिसे हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी का श्रेय दिया जाता है। कतिपय विद्वान बंग महिला की कहानी 'दुलाई वाली' (1907) को भी हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी स्वीकारते हैं।

सन् 1909 में काशी से 'इन्दु' मासिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ जिसमें 1911 में जयशंकर प्रसाद की कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। सन् 1911 से 1927 तक कहानी का विकास काल रहा, इसमें चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'सुखमय जीवन' विश्वम्भर नाथ की 'परदेश' (1912), राजा राधिकारमण सिंह की 'कानों में कंगना' (1913) मासिक पत्रिका 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। सन् 1914 में आचार्य चतुरसेन शास्त्री की 'गृहलक्ष्मी' व 1915 में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' प्रकाशित हुई। इसी वर्ष कथा साहित्य के अमर कथाकार मुंशी प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' कहानी प्रकाशित हुई। हिन्दी कहानी को जनजीवन से जोड़ने और उसके क्षेत्र को व्यापकता प्रदान करने का श्रेय प्रेमचन्द को है। यथार्थ जीवन

को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर उन्होंने समाज की रूढ़ियों, धर्म के बाह्याडम्बरों, राजनीति के खोखलेपन, उत्कट देश–प्रेम, आर्थिक वैषम्य, कृषक वर्ग एवं श्रमिक वर्ग के शोषण के जीवन्त सशक्त चित्र खींचे। उन्होंने हिन्दी में यथार्थवादी आदर्शोन्मुख कहानी लेखन का सूत्रपात किया। वे अपनी आरम्भिक कहानियों में घटनाओं को महत्त्व देते रहे पर धीरे–धीरे उनकी दृष्टि चरित्र की ओर गई। अन्ततः मनोवैज्ञानिक अनुभूति को ही उन्होंने अपनी कहानी का आधार स्वीकार किया। ग्राम्य जीवन को केन्द्र में रखकर लिखी गई कहानियाँ 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी', 'ईदगाह', 'सुजान भगत', 'पूस की रात', 'कफन' आदि सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

कहानी विकास युग में अधिकांश कहानीकार प्रेमचन्द की शिल्पकला के अनुगामी रहे। सियारामशरण गुप्त की कहानियाँ यथार्थ पृष्ठभूमि पर निर्मित होकर भी आदर्शवादी जीवन–दृष्टि पर अधिक बल देती हैं। वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक, सामाजिक और शिकार सम्बन्धी कहानियों का लेखन किया जिनमें आदर्शोन्मुख यथार्थ की प्रवृत्ति अधिक रही है।

प्रेमचन्द के समकालीन कहानीकारों में जयशंकर प्रसाद का योगदान भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्होंने कहानी में भावमूलक आदर्शवादी परम्परा की नींव डाली। उनकी कहानियाँ कभी गीतिकाव्य की संवेदना से प्रेरित तो कहीं महाकाव्य की संवेदना से प्रेरित होकर लिखी गईं। 'आकाशदीप' और 'पुरस्कार' उनकी उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। प्राचीन भारत की वैभवपूर्ण, सांस्कृतिक झाँकी का चित्रण इनकी कहानियों में देखने को मिलता है।

हिन्दी कहानी के संक्रान्ति युग में कहानी व्यक्तिपरक एवं भावपरक हो गई। जैनेन्द्र ने नैतिक मान्यताओं के आधार पर अपने चरित्र खड़े किए। अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी के पात्र अहं और विद्रोह की भित्ति पर खड़े हुए। अज्ञेय की 'शत्रु' कहानी इसका उदाहरण है। इस युग में आकर पात्रों के मन में उठने वाला अन्तर्द्वन्द्व बाहरी घटनाओं से सम्बन्धित नहीं रहा। अब अवचेतन मन की आन्तरिक प्रवृत्तियाँ ही उनके बाह्य–व्यापारों का संचालन करने लगीं। जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों में घटनाओं और कार्यों की अपेक्षा मानसिक ऊहापोह विश्लेषण को प्रधानता दी। अज्ञेय ने अपने चरित्रों में वैयक्तिकता को अधिक प्रश्रय दिया।

मार्क्सवादी विचारधारा की पोषक कहानियों में वर्ग संघर्ष का चित्रण मिलता है। इन प्रगतिवादी कहानीकारों ने धार्मिक अन्धविश्वासों, परम्परागत रूढ़ियों, समाज में चलते आ रहे शोषण चक्र का तीव्रता के साथ विरोध और खण्डन किया। उन्होंने व्यक्ति के रूप में न देखकर समाज के माध्यम से देखा और पूरे इतिहास का आर्थिक दृष्टि से मूल्यांकन कर प्रतिपादित किया कि उत्पादन के साधन जब तक उत्पादनकर्ता के हाथों में न आयेंगे तब तक ये संघर्ष जारी रहेगा।

इस संघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति यशपाल की कहानियों में देखने को मिलती हैं। अन्य कहानीकारों में रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन आदि उल्लेखनीय हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कहानी ने नई दिशा की ओर कदम बढ़ाये। देश के सामने नए दृष्टिकोण उभरे। जीवन मूल्यों में परिवर्तन आने लगा। कहानी के शिल्प में नए प्रयोग होने लगे। सोच और चिन्तन में परिवर्तन आया। इस काल में निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, मन्नू भण्डारी, ज्ञान रंजन आदि कहानीकार प्रमुख रूप से उभरे। समकालीन कहानी का रचना संसार अपने आस–पास के परिवेश से निर्मित है। जीवन की अनेक समस्याओं को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है। इसी काल में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव व कमलेश्वर ने 'नई कहानी' के आन्दोलन का सूत्रपात किया। तत्पश्चात् सचेतन कहानी और अकहानी जैसे अन्य आन्दोलन शुरू हुए।

राजस्थान के कहानीकारों में यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', मणि मधुकर, पानू खोलिया, हेतु भारद्वाज, ईश्वर चन्दर, रमेश उपाध्याय, आलम शाह खान व स्वयं प्रकाश आदि ने हिन्दी कहानी में अपना योगदान दिया।

कहानी के तत्त्व–

कहानी के मूलतः छः तत्व हैं। ये हैं– विषयवस्तु अथवा कथानक, चरित्र, संवाद, भाषा शैली, वातावरण और उद्देश्य।

कथानक (विषयवस्तु)–

प्रत्येक कहानी में कोई न कोई घटनाक्रम अवश्य होता है। कहानी में वर्णित घटनाओं के समूह को कथानक कहते हैं। कथानक किसी भी कहानी की आत्मा है। इसलिए कथानक की योजना इस प्रकार होनी चाहिए कि सभी घटनाएं और प्रसंग परस्पर सम्बद्ध हों। उनमें बिखराव या परस्पर विरोध नहीं हो। मौलिकता, रोचकता, सुसंगठन, जिज्ञासा, कुतूहल की सृष्टि अच्छे कथानक के गुण हैं। साधारण से साधारण कथानक को भी कहानीकार कल्पना एवं मर्मस्पर्शी अनुभूतियों से सजाकर एक वैचित्र्य और आकर्षण प्रदान कर सकता है।

चरित्र (पात्र)–

प्रत्येक कहानी में कुछ पात्र होते हैं जो कथानक के सजीव संचालक होते हैं। इनमें एक ओर कथानक का आरम्भ, विकास और अन्त होता है तो दूसरी ओर हम कहानी में इनसे आत्मीयता प्राप्त करते हैं। कहानी में मुख्य रूप से दो प्रकार के पात्र होते हैं, पहला वर्गगत अर्थात् जो अपने वर्ग की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, दूसरे व्यक्तिगत वे पात्र जिनकी निजी विशेषताएँ होती हैं।

कहानी में पात्रों की संख्या सीमित होनी चाहिए। कहानी में लेखक की दृष्टि प्रमुख पात्र के चरित्र पर अधिक रहती है। इसलिए अन्य पात्रों के चरित्र का विकास मुख्य पात्र के सहारे ही होना चाहिए। कहानी में पात्रों की संख्या अधिक न हो। प्रमुख पात्र का चरित्र ही क्षण भर के लिए अमिट प्रभाव छोड़कर चला जाय। जो भी पात्र कहानी में आते हैं उनके व्यक्तित्व को पूरी गरिमा के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए तथा उनकी भावनाओं को पूरी तरह अभिव्यक्ति मिलनी चाहिए।

संवाद–

संवाद कहानी का आवश्यक अंग है। कहानी में पात्रों के वार्तालाप संवाद कहलाते हैं। ये संवाद कहानी को सजीव और प्रभावशाली बनाते हैं। कहानी में संवाद कथानक को गति प्रदान करते हैं, पात्रों का चरित्र–चित्रण करते हैं, कहानी को स्वाभाविकता प्रदान करते हैं, उसका उद्देश्य स्पष्ट करते हैं। संवाद का सबसे बड़ा गुण है–जिज्ञासा और कुतूहल उत्पन्न करना। इन सब कार्यों का संपादन तभी हो सकता है जब कहानी के संवाद पात्र, परिस्थिति एवं घटना के अनुकूल हों, संक्षिप्त एवं अर्थपूर्ण हों, चरित्रों को उभारने वाले, सरल एवं स्पष्ट हों।

भाषा शैली–

कहानी की भाषा ऐसी होनी चाहिए कि उसमें मूल संवेदना को व्यक्त करने की पूरी क्षमता हो।

कहानीकार का दायित्व और उसकी रचना शक्ति का सच्चा परिचय उसकी भाषा से ही मिलता है। भाषा की दृष्टि से सफल कहानी वही मानी जाती है जिसकी भाषा सरल, स्पष्ट प्रभावमयी और विषय एवं पात्रानुकूल हो। वह ओज, माधुर्य गुणों से युक्त हो।

जहाँ तक शैली का सम्बन्ध है उसमें सजीवता, रोचकता, संकेतात्मकता तथा प्रभावात्मकता आदि का होना आवश्यक है। शैली का संबंध कहानी के सम्पूर्ण तत्त्वों से रहता है। कहानीकार इन शैलियों में कहानी लिख सकता है– वर्णन–प्रधान–शैली, आत्मकथात्मक–शैली, पात्रात्मक शैली, डायरी शैली, नाटकीय शैली, भावनात्मक शैली आदि। कहानी के लिए सरस, संवादात्मक शैली अधिक उपयुक्त होती है।

वातावरण–

वातावरण का अर्थ है, उन सभी परिस्थितियों का चित्रण करना जिनमें कहानी की घटनाएँ घटित हो रही हैं तथा जिनमें कहानी के पात्र साँस ले रहे हैं। सफल कहानी में देश, काल, प्रकृति, परिवेश आदि का प्रभाव सृष्टि के लिए अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्वीकार किया जाता है। वातावरण की सृष्टि से कहानी हृदय पर मार्मिक प्रभाव की अभिव्यंजना करती है। कहानीकार पूरे संदर्भ में सामाजिक परिवेश को देखता है, उसका यथार्थ वर्णन करता है। वातावरण के माध्यम से वह कहानी में एकांतिक प्रभाव लाने की स्थिति उत्पन्न करता है। सही वातावरण किसी भी कहानी को विश्वसनीय बनाता है। 'उसने कहा था', 'पुरस्कार' जैसी कहानियों की प्रभावान्विति में वातावरण का सहयोग देखा जा सकता है।

उद्देश्य–

कहानी की रचना का उद्देश्य यूं तो मनोरंजन माना जाता है किन्तु मनोरंजन ही कहानी का एक मात्र उद्देश्य नहीं होता। कहानी में जीवन के किसी एक पक्ष के प्रति दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जाता है। आज की कहानी मानव–जीवन के किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को उजागर करती है। कहानी द्वारा जीवन–सत्य की व्याख्या एवं मानवीय आदर्शों की स्थापना भी की जाती है। आकार में लघु होने के उपरान्त भी कहानी महान विचारों का वहन करती है। उदाहरण के लिए– भारतेन्दु युग की कहानियों का मुख्य स्वर सामाजिक सुधारवादी एवं धार्मिक दृष्टिकोण से प्रेरित था। प्रेमचन्द की कहानियाँ मध्यम वर्ग के सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण है। जैनेन्द्र की कहानियों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रमुख है तो नई कहानियों में सामाजिक जीवन की विसंगतियों एवं जीवन के अभावों, निराशाओं, कुंठाओं का सटीक चित्रण हुआ है।

अतः स्पष्ट है कहानी का उद्देश्य कहानीकार के दृष्टिकोण एवं विषयवस्तु के अनुकूल ही होता है।

*****

बड़े घर की बेटी

—प्रेमचन्द

लेखक—परिचय

प्रेमचन्द का रचनाकाल 1901 से आरम्भ होता है। जब असहयोग आन्दोलन चल रहा था तब आप सब—डिप्टी इंस्पेक्टर थे। नौकरी छोड़कर साहित्य क्षेत्र में आए। प्रेमचन्द पहले उर्दू में 'नवाबराय' के नाम से लिखते थे। सन् 1907 में इनकी पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' उर्दू में प्रकाशित हुई। फिर हिन्दी से प्रभावित होकर हिन्दी में लिखने लगे। हिन्दी में इनकी पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' थी जो सन् 1916 में प्रकाशित हुई। आपका पहला उर्दू कहानी संग्रह 'सोजे वतन' व 'समर यात्रा' कहानी संग्रह को अंग्रेज सरकार ने जब्त किया व 'हंस' पत्रिका को बंद करने पर बाध्य कर दिया था।

अपनी रचनाओं में उन्होंने अपने युग के संघर्ष को उभारा है। उनकी रचनाओं में ग्रामीण व किसानों के प्रभावशाली चित्र मिलते हैं। वे सुधारक और मानवता के उपासक थे। उनकी सभी कहानियाँ वातावरण प्रधान व चरित्र प्रधान हैं। प्रेमचन्द की रचनाओं का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है।

प्रेमचन्द प्रथम कथाकार थे जिन्होंने हिन्दी में जागरण और निर्माण की कहानियाँ लिखीं। आपकी रचनाओं पर हिन्दी में फिल्में भी बनीं। 'शतरंज के खिलाड़ी' काफी प्रसिद्ध हुई। आपने मर्यादा, माधुरी, हंस तथा जागरण का सम्पादन भी किया था।

सेवासदन, निर्मला, रंगभूमि, गबन, कायाकल्प, प्रेमाश्रम, गोदान आदि प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। लगभग 300 कहानियाँ 'मानसरोवर' के आठ खण्डों में संकलित हैं। पंच परमेश्वर, सप्तसरोज, प्रेम द्वादशी, प्रेम चतुर्थी, प्रेम पचीसी, सप्त सुमन आदि कई कहानी संग्रह प्रसिद्ध हुए। निबंध, नाटक व आलोचनाएँ भी लिखीं।

पाठ—परिचय

प्रस्तुत कहानी में प्रेमचन्द ने बहू के कर्त्तव्य व उसकी जिम्मेदारियों के बारे में चर्चा की है। बेटी बड़े घर की हो या छोटे घर की। बहू बन कर जिस घर में जाती है उस घर को टूटने से बचाये रखने की जिम्मेदारी होती है उसकी। दो भाइयों में जरा सी बात पर झगड़ा हो गया। बड़ी भाभी का अपमान करने वाले छोटे भाई को बड़े भाई ने घर से निकल जाने को कह दिया। छोटे भाई ने भूल स्वीकार करते हुए क्षमा माँग ली। घर के बिखरने की स्थिति में भाभी के विवेकपूर्ण कदम से ही घर—परिवार बिखरने से बचा। लोगों को ताली बजाने का अवसर ही नहीं मिला।

बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गाँव के जमींदार और नंबरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धन–धान्य संपन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मंदिर जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हीं के कीर्ति–स्तंभ थे। कहते हैं, इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीर में अस्थि–पंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था; पर दूध शायद बहुत देती थी; क्योंकि एक–न–एक आदमी हाँड़ी लिए उसके सिर पर सवार ही रहता था। बेनीमाधव सिंह अपनी आधी से अधिक–सम्पत्ति वकीलों को भेंट कर चुके थे उनकी वर्तमान आय एक हजार रुपये वार्षिक से अधिक न थी।

ठाकुर साहब के दो बेटे थे। बड़े का नाम श्रीकंठ सिंह था। उसने बहुत दिनों के परिश्रम और उद्योग के बाद बी.ए. की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तर में नौकर था। छोटा लड़का लालबिहारी सिंह दोहरे बदन का, सजीला जवान था। भरा हुआ मुखड़ा, चौड़ी छाती। भैंस का दो सेर ताजा दूध वह उठकर सबेरे पी जाता था। श्रीकंठ सिंह की दशा बिल्कुल विपरीत थी। इन नेत्रप्रिय गुणों को उन्होंने बी.ए.– इन्हीं दो अक्षरों पर न्योछावर कर दिया था। इन दो अक्षरों ने उनके शरीर को निर्बल और चेहरे को कांतिहीन बना दिया था। इसी से वैद्यक ग्रंथों पर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वेदिक औषधियों पर उनका अधिक विश्वास था। शाम–सबेरे से उनके कमरे से प्रायः खरल की सुरीली कर्णमधुर ध्वनि सुनाई दिया करती थी, लाहौर और कलकत्ते के वैद्यों से बड़ी लिखा–पढ़ी रहती थी।

श्रीकंठ इस अंग्रेजी डिग्री के अधिपति होने पर भी अंग्रेजी सामाजिक प्रथाओं के विशेष प्रेमी न थे; बल्कि वह बहुधा बड़े जोर से उसकी निंदा और तिरस्कार किया करते थे। इसी से गाँव में उनका बड़ा सम्मान था। दशहरे के दिनों में वह बड़े उत्साह से रामलीला में सम्मिलित होते और स्वयं किसी–न–किसी पात्र का पार्ट लेते थे। गौरीपुर में रामलीला के वही जन्मदाता थे। प्राचीन हिन्दू सभ्यता का गुणगान उनकी धार्मिकता का प्रधान अंग था। सम्मिलित कुटुंब के तो वह एक–मात्र उपासक थे। आजकल स्त्रियों को कुटुंब में मिल–जुलकर रहने की जो अरुचि होती है, उसे वह जाति और देश दोनों के लिए हानिकारक समझते थे। यही कारण था कि गाँव की ललनाएँ उनकी निंदक थीं। कोई–कोई तो उन्हें अपना शत्रु समझने में भी संकोच न करती थीं। स्वयं उनकी पत्नी को ही इस विषय में उनसे विरोध था। यह इसलिए नहीं कि उसे अपने सास–ससुर, देवर या जेठ आदि से घृणा थी; बल्कि उसका विचार था कि यदि बहुत सहने और तरह देने पर भी परिवार के साथ निर्वाह न हो सके, तो आए–दिन की कलह से जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि अपनी खिचड़ी अलग पकाई जाए।

आनंदी एक बड़े उच्च कुल की लड़की थी। उसके बाप एक छोटी–सी रियासत के ताल्लुकेदार थे। विशाल भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज, बहरी शिकरे, झाड़–फानूस, ऑनरेरी मजिस्ट्रेटी और ऋण, जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार के भोग्य पदार्थ हैं, सभी यहाँ विद्यमान थे। नाम था भूपसिंह। बड़े उदार–चित्त और प्रतिभाशाली पुरुष थे; दुर्भाग्य से लड़का एक भी न था। सात लड़कियाँ हुईं और देवयोग से सब–की–सब जीवित रहीं। पहली उमंग में तो उन्होंने तीन ब्याह दिल खोलकर किए; पर पन्द्रह–बीस हजार रुपयों का कर्ज सिर पर हो गया, तो आँख खुली, हाथ समेट लिया। आनंदी चौथी लड़की थी। वह अपनी सब बहनों से अधिक रूपवती और गुणवती थी। इससे ठाकुर भूपसिंह उसे बहुत प्यार करते थे। सुंदर संतान को कदाचित उसके माता–पिता भी अधिक चाहते हैं। ठाकुर साहब बड़े धर्म–संकट में थे कि इसका विवाह कहाँ करें? न तो यही चाहते थे कि ऋण का बोझ बढ़े और न यही स्वीकार था

कि उसे अपने को भाग्यहीन समझना पड़े। एक दिन श्रीकंठ उनके पास किसी चंदे का रुपया माँगने आए। शायद नागरी–प्रचार का चंदा था। भूप सिंह उनके स्वभाव पर रीझ गए और धूमधाम से श्रीकंठ सिंह का आनंदी के साथ ब्याह हो गया।

आनंदी अपने नए घर में आई, तो यहाँ का रंग–ढंग कुछ और ही देखा। जिस टीम–टाम की उसे बचपन से ही आदत पड़ी हुई थी, वह यहाँ नाम–मात्र को भी न थी। हाथी–घोड़ों का तो कहना ही क्या, कोई सजी हुई सुंदर बहली तक न थी। रेशमी स्लीपर साथ लाई थी; पर यहाँ बाग कहाँ। मकान में खिड़कियाँ तक न थी, न जमीन पर फर्श, न दीवार पर तस्वीरें। यह एक सीधा–सादा देहाती गृहस्थ मकान था, किन्तु आनंदी ने थोड़ी ही दिनों में अपने को इस नई अवस्था के ऐसा अनुकूल बना लिया, मानो उसने विलास के सामान कभी देखे ही न थे।

(2)

एक दिन दोपहर के समय लालबिहारी सिंह दो चिड़िया लिए हुए आया और भावज से बोला– जल्दी से पका दो, मुझे भूख लगी है। आनंदी भोजन बनाकर उसकी राह देख रही थी। अब वह नया व्यंजन बनाने बैठी। हाँड़ी में देखा, तो घी पाव–भर से अधिक न था। बड़े घर की बेटी, किफायत क्या जाने। उसने सब घी मांस में डाल दिया। लालबिहारी खाने बैठा, तो दाल में घी न था, बोला–दाल में घी क्यों नहीं छोड़ा?

आनंदी ने कहा– घी सब माँस में पड़ गया। लालबिहारी जोर से बोला– अभी परसों घी आया है। इतनी जल्दी उठ गया ?

आनंदी ने उत्तर दिया– आज तो कुल पाव–भर रहा होगा। वह सब मैंने माँस में डाल दिया।

जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी जल उठती है, उसी तरह से क्षुधा बावला मनुष्य जरा–जरा–सी बात पर तिनक जाता है। लालबिहारी को भावज की यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई, तिनककर बोला– मैके में तो चाहे घी की नदी बहती हो!

स्त्री गालियाँ सह लेती हैं, मार भी सह लेती हैं; पर मैके की निंदा उनसे नहीं सही जाती। आनंदी मुँह फेरकर बोली– हाथी मरा भी, तो नौ लाख का। वहाँ इतना घी नित्य लोग खा जाते हैं।

लालबिहारी को क्रोध आ गया, थाली उठाकर पलट दी, और बोला– जी चाहता है, जीभ पकड़कर खींच लूँ।

आनंदी को क्रोध आ गया। मुँह लाल हो गया, बोली– वह होते तो आज इसका मजा चखाते।

अब अपढ़, उजड्ड ठाकुर से न रहा गया। उसकी स्त्री एक साधारण जमींदार की बेटी थी। जब जी चाहता, उस पर हाथ साफ कर लिया करता था। खड़ाऊ उठाकर आनंदी की ओर जोर से फेंकी, और बोला– जिसके गुमान पर भूली हुई हो, उसे भी देखूंगा और तुम्हें भी।

आनंदी ने हाथ से खड़ाऊ रोकी, सिर बच गया; पर अंगुली में बड़ी चोट आई। क्रोध के मारे हवा से हिलते पत्ते की भाँति काँपती हुई अपने कमरे में आकर खड़ी हो गई। स्त्री का बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घमंड होता है। आनंदी खून का घूँट पीकर रह गई।

(3)

श्रीकंठ सिंह शनिवार को घर आया करते थे। बृहस्पति को यह घटना हुई थी। दो दिन तक आनंदी कोप–भवन में रही। न कुछ खाया न पिया, उनकी बाट देखती रही। अंत में शनिवार को वह नियमानुकूल संध्या–समय पर घर आए और बाहर बैठकर कुछ इधर–उधर की बातें करने लगे। यह

वार्तालाप दस बजे रात तक होता रहा। गाँव के भद्र पुरुषों को इन बातों में ऐसा आनंद मिलता था कि खाने–पीने की भी सुध न रहती थी। श्रीकंठ को पिंड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। ये दो–तीन घंटे आनंदी ने बड़े कष्ट से काटे! किसी तरह भोजन का समय आया। पंचायत उठी। एकांत हुआ, तो लालबिहारी ने कहा– भैया, आप जरा भाभी को समझा दीजिएगा कि मुँह सँभालकर बातचीत किया करें, नहीं तो एक दिन अनर्थ हो जाएगा।

बेनीमाधवसिंह ने बेटे की ओर साक्षी दी– हाँ, बहू–बेटियों का यह स्वभाव अच्छा नहीं कि मर्दों के मुँह लगे।

लालबिहारी– वह बड़े घर की बेटी है, तो हम भी कोई ऐसे–वैसे नहीं हैं।

श्रीकंठ ने चिंतित स्वर से पूछा– आखिर बात क्या हुई ?

लालबिहारी ने कहा– कुछ भी नहीं; यों ही आप–ही–आन उलझ पड़ी। मैके के सामने हम लोगों को कुछ समझती ही नहीं।

श्रीकंठ खा–पीकर आनंदी के पास गए। वह भरी बैठी थी। यह हजरत भी कुछ तीखे थे। आनंदी ने पूछा– चित्त तो प्रसन्न है?

श्रीकंठ बोले– बहुत प्रसन्न है; पर तुमने आजकल घर में यह क्या उपद्रव मचा रखा है ?

आनंदी की त्योरियों पर बल पड़ गए। झुँझलाहट के मारे बदन में यह ज्वाला सी दहक उठी। बोली–जिसने तुमसे यह आग लगाई है, उसे पाऊँ, मुँह झुलस दूँ।

श्रीकंठ– इतनी गरम क्यों होती हो, बात तो कहो।

आनंदी– क्या कहूँ, यह मेरे भाग्य का फेर है! नहीं तो गँवार छोकरा, जिसको चपरासीगिरी करने का भी शऊर नहीं, मुझे खड़ाऊ से मारकर यों न अकड़ता।

श्रीकंठ– सब हाल साफ–साफ कहो, तो मालूम हो। मुझे तो कुछ पता नहीं।

आनंदी– परसों तुम्हारे लाड़ले भाई ने मुझसे माँस पकाने को कहा। घी हांडी में पाव–भर से अधिक न था। वह सब मैंने माँस में डाल दिया। जब खाने बैठा तो कहने लगा– दाल में घी क्यों नहीं है? बस इसी पर मेरे मैके को बुरा–भला कहने लगा– मुझसे न रहा गया। मैंने कहा कि वहाँ इतना घी तो लोग खा जाते हैं? और किसी को जान भी नहीं पड़ता। बस इतनी–सी बात पर इस अन्यायी ने मुझ पर खड़ाऊ फेंक मारी। यदि हाथ से न रोक लूँ तो सिर फट जाए। उसी से पूछो, मैंने जो कुछ कहा है, वह सच है या झूठ।

श्रीकंठ की आँख लाल हो गई। बोले–यहाँ तक हो गया, इस छोकरे का यह साहस!

आनंदी स्त्रियों के स्वभावानुसार रोने लगी; क्योंकि आँसू उनकी पलकों पर रहते हैं। श्रीकंठ बड़े धैर्यवान और शांत पुरुष थे। उन्हें कदाचित् ही कभी क्रोध आता था; स्त्रियों के आँसू ; पुरुष की क्रोधाग्नि भड़काने में तेल का काम देते हैं। रात–भर करवटें बदलते रहे। उद्विग्नता के कारण पलक तक नहीं झपकी। प्रातःकाल अपने बाप के पास जाकर बोले– दादा, अब इस घर में मेरा निबाह न होगा।

इस तरह की विद्रोहपूर्ण बातें कहने पर श्रीकंठ ने कितनी ही बार अपने कई मित्रों को आड़े हाथों लिया था; परन्तु दुर्भाग्य, आज उन्हें स्वयं वे ही बातें अपने मुँह से कहनी पड़ीं। दूसरों को उपदेश देना भी कितना सहज है!

बेनीमाधव सिंह घबरा उठे और बोले–क्यों?

श्रीकंठ– इसलिए कि मुझे भी अपनी मान–प्रतिष्ठा का कुछ विचार है। आपके घर में अब अन्याय और हठ का प्रकोप हो रहा है। जिनको बड़ों का आदर–सम्मान करना चाहिए, वे उनके सिर चढ़ते हैं।

मैं दूसरे का नौकर ठहरा घर पर रहता नहीं। यहाँ मेरे पीछे स्त्रियों पर खड़ाऊ और जूतों की बौछारें होती हैं। कड़ी बात तक चिंता नहीं। कोई एक की दो कह ले, वहाँ तक मैं सह सकता हूँ किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे ऊपर लात–घूँसे पड़ें और मैं दम न मारूँ।

बेनीमाधवसिंह कुछ जवाब न दे सके। श्रीकंठ सदैव उनका आदर करते थे। उनके ऐसे तेवर देखकर बूढ़ा अवाक् रह गया। केवल इतना ही बोला–बेटा, तुम बुद्धिमान होकर ऐसी बातें करते हो ? स्त्रियाँ इस तरह घर का नाश कर देती हैं। उनको बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं।

श्रीकंठ– इतना मैं जानता हूँ, आपके आशीर्वाद से ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। आप स्वयं जानते हैं कि मेरे ही समझाने–बुझाने से, इसी गाँव में कई घर सँभल गए, पर जिस स्त्री की मान–प्रतिष्ठा का ईश्वर के दरबार में उत्तरदाता हूँ, उसके प्रति ऐसा घोर अन्याय और पशुवत व्यवहार मुझे असह्य है। आप सच मानिए, मेरे लिये यही कुछ कम नहीं है कि लालबिहारी को कुछ दंड नहीं देता।

अब बेनीमाधव सिंह भी गरमाए। ऐसी बातें और न सुन सके। बोले– लालबिहारी तुम्हारा भाई है। उससे जब कभी भूल–चूक हो, उसके कान पकड़ो लेकिन ....

श्रीकंठ– लालबिहारी को मैं अब अपना भाई नहीं समझता।

बेनीमाधवसिंह– स्त्री के पीछे ?

श्रीकंठ– जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेक के कारण।

दोनों कुछ देर चुप रहे। ठाकुर साहब लड़के का क्रोध शांत करना चाहते थे, लेकिन यह नहीं स्वीकार करना चाहते थे कि लालबिहारी ने कोई अनुचित काम किया है। इसी बीच में गाँव के और कई सज्जन हुक्के–चिलम* के बहाने वहाँ आ बैठे। कई स्त्रियों ने जब यह सुना कि श्रीकंठ पत्नी के पीछे पिता से लड़ने को तैयार हैं, तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। दोनों पक्षों की मधुर वाणियाँ सुनने के लिए उनकी आत्माएँ तिलमिलाने लगीं। गाँव में कुछ ऐसे कुटिल मनुष्य भी थे, जो इस कुल की नीतिपूर्ण गति पर मन–ही–मन जलते थे। वे कहा करते थे– श्रीकंठ अपने बाप से दबता है, इसलिए वह दब्बू है। उसने विद्या पढ़ी, इसलिए वह किताबों का कीड़ा है। बेनीमाधव सिंह उसकी सलाह के बिना कोई काम नहीं करते, यह उनकी मूर्खता है। इन महानुभावों को शुभकामनाएँ आज पूरी होती दिखाई दीं। कोई हुक्का पीने के बहाने और कोई लगान की रसीद दिखाने आकर बैठ गया। बेनीमाधव सिंह पुराने आदमी थे। इन भावों को ताड़ गए। उन्होंने निश्चय किया चाहे कुछ ही क्यों न हो, इन द्रोहियों को ताली बजाने का अवसर न दूँगा। तुरंत कोमल शब्दों में बोले–बेटा, मैं तुमसे बाहर नहीं हूँ। तुम्हारा जो जी चाहे करो, अब लड़के से अपराध हो गया।

इलाहाबाद का अनुभव–रहित झल्लाया हुआ ग्रेजुएट इस बात को न समझ सका उसे डिबेटिंग–क्लब में अपनी बात पर अड़ने की आदत थी, इन हथकंडों की उसे क्या खबर ? बाप ने जिस मतलब से बात पलटी थी, वह उसकी समझ में न आया। बोला लालबिहारी के साथ अब इस घर में नहीं रह सकता।

बेनीमाधव–बेटा, बुद्धिमान लोग मूर्खों की बात पर ध्यान नहीं देते। वह बेसमझ लड़का है। उससे जो कुछ भूल हुई, उसे तुम बड़े होकर क्षमा करो।

श्रीकंठ– उसकी इस धृष्टता को मैं कदापि नहीं सह सकता। या तो वही घर में रहेगा, या मैं ही। आपको यदि वह अधिक प्यारा है, तो मुझे विदा कीजिए, मैं अपना भार आप संभाल लूँगा। यदि मुझे रखना चाहते हैं तो उससे कहिए, जहाँ चाहे चला जाए बस यह मेरा अंतिम निश्चय है।

लालबिहारी सिंह दरवाजे की चौखट पर चुपचाप खड़ा बड़े भाई की बातें सुन रहा था। वह

---

* धूम्रपान कानूनी व स्वास्थ्य की दृष्टि से निषिद्ध तथा हानिकारक है।

उनका बहुत आदर करता था। उसे कभी इतना साहस न हुआ था कि श्रीकंठ के सामने चारपाई पर बैठ जाए, हुक्का पी ले या पान खा ले। बाप का भी वह इतना मान न करता था। श्रीकंठ का भी उस पर हार्दिक स्नेह था। अपने होश में उन्होंने कभी उसे घुड़का तक न था। जब वह इलाहाबाद से आते, तो उसके लिए कोई–न–कोई वस्तु अवश्य लाते, मुगदर की जोड़ी उन्होंने ही बनवा दी थी। पिछले साल जब उसने अपने से ड्योढ़े जवान को नागपंचमी के दिन दंगल में पछाड़ दिया, तो उन्होंने पुलकित होकर अखाड़े में ही जाकर उसे गले से लगा लिया था, पाँच रुपये के पैसे लुटाए थे। ऐसे भाई के मुँह से आज ऐसी हृदय–विदारक बात सुनकर लालबिहारी को बड़ी ग्लानि हुई। वह फूट–फूटकर रोने लगा। इसमें संदेह नहीं कि अपने किए पर पछता रहा था। भाई के आने से एक दिन पहले से उसकी छाती धड़कती थी कि देखूँ भैया क्या कहते हैं ? मैं उनके सम्मुख कैसे जाऊँगा, उनसे कैसे बोलूँगा, मेरी आँखें उनके सामने कैसे उठेंगी? उसने समझा था कि भैया मुझे बुलाकर समझा देंगे। इस आशा के विपरीत आज उसने उन्हें निर्दयता की मूर्ति बने हुए पाया। वह मूर्त था। परन्तु उसका मन कहता था कि भैया मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। यदि श्रीकंठ उसे अकेले बुलाकर दो–चार बातें कह देते; इतना ही नहीं दो–चार तमाचे भी लगा देते तो कदाचित उसे इतना दुःख न होता; पर भाई का यह कहना कि अब मैं इसकी सूरत नहीं देखना चाहता, लालबिहारी से सहा न गया। वह रोता हुआ घर आया। कोठरी में जाकर कपड़े पहने, आँखें पोंछी, जिससे कोई यह न समझे कि रोता था। तब आनंदी के द्वार पर आकर बोला– भाभी, भैया ने निश्चय किया है कि वह मेरे साथ इस घर में न रहेंगे। अब वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते; इसलिए अब मैं जाता हूँ। उन्हें फिर मुँह न दिखाऊँगा। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, उसे क्षमा करना।

यह कहते–कहते लालबिहारी का गला भर आया।

जिस समय लालबिहारी सिंह सिर झुकाए आनंदी के द्वार पर खड़ा था, उसी समय श्रीकंठ भी आँखें लाल किए बाहर से आए। भाई को खड़ा देखा, तो घृणा से आँखें फेर लीं, और कतराकर निकल गए। मानो उसकी परछाईं से दूर भागते हों।

आनंदी ने लालबिहारी की शिकायत तो की थी, लेकिन अब मन में पछता रही थी। वह स्वभाव से ही दयावती थी। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था कि बात इतनी बढ़ जाएगी। वह मन में अपने पति पर झुँझला रही थी कि यह इतने गरम क्यों होते हैं? उस पर यह भय भी लगा हुआ था कि कहीं मुझसे इलाहाबाद चलने को कहें, तो कैसे क्या करूँगी? इस बीच में जब उसने लालबिहारी को दरवाजे पर खड़े यह कहते सुना कि अब मैं जाता हूँ, मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, क्षमा करना, तो उसका रहा–सहा क्रोध भी पानी हो गया। वह रोने लगी। मन का मैल धोने के लिए नयनजल से उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं है।

श्रीकंठ को देखकर आनंदी ने कहा–लाला बाहर खड़े बहुत रो रहे हैं।

श्रीकंठ– तो मैं क्या करूँ?

आनंदी – भीतर बुला लो। मेरी जीभ में आग लगे! मैंने कहाँ से झगड़ा उठाया।

श्रीकंठ– मैं न बुलाऊँगा।

आनंदी– पछताओगे। उन्हें बहुत ग्लानि हो गई है, ऐसा न हो, कहीं चल दें।

श्रीकंठ न उठे। इतने में लालबिहारी ने फिर कहा– भाभी, भैया से मेरा प्रणाम कह दो। वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते; इसलिए मैं भी अपना मुँह उन्हें न दिखाऊँगा।

लालबिहारी इतना कहकर लौट पड़ा, और शीघ्रता से दरवाजे की ओर बढ़ा। अंत में आनंदी कमरे से निकली और उसका हाथ पकड़ लिया। लालबिहारी ने पीछे फिरकर देखा और आँखों में आँसू भरे

बोला– मुझे जाने दो।

आनंदी– कहाँ जाते हो ?

लालबिहारी– जहाँ कोई मेरा मुँह न देखे।

आनंदी– मैं न जाने दूँगी।

लालबिहारी– मैं तुम लोगों के साथ रहने योग्य नहीं हूँ।

आनंदी– तुम्हें मेरी सौगंध, अब एक पग भी आगे न बढ़ाना।

लालबिहारी– जब तक मुझे यह न मालूम हो जाए कि भैया का मन मेरी तरफ से साफ हो गया, तब तक मैं इस घर में कदापि न रहूँगा?

आनंदी– मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि तुम्हारी ओर से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है।

अब श्रीकंठ का हृदय पिघला। उन्होंने बाहर आकर लालबिहारी को गले से लगा लिया। दोनों भाई फूट–फूटकर रोए। लालबिहारी ने सिसकते हुए कहा– भैया, अब कभी मत कहना कि तुम्हारा मुँह न देखूँगा। इसके सिवा आप जो दंड देंगे, मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।

श्रीकंठ ने काँपते हुए स्वर से कहा– लल्लू! इन बातों को बिलकुल भूल जाओ। ईश्वर चाहेगा, तो फिर ऐसा अवसर न आवेगा।

बेनीमाधव सिंह बाहर से आ रहे थे। दोनों भाइयों को गले मिलते देखकर आनंद से पुलकित हो गए। बोल उठे– बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं। बिगड़ता हुआ काम बना लेती हैं।

गाँव में जिसने यह वृत्तांत सुना, उसी ने इन शब्दों में आनंदी की उदारता को सराहा– 'बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।'

शब्दार्थ–

देवयोग– भाग्य,	क्षुधा–भूख,	भावज– भाभी,
अनर्थ–बुरा,	हठ– जिद,	अविवेक– बुद्धिहीनता,
ताड़ गए– समझ गए,	ग्लानि– पश्चात्ताप,	दंगल– अखाड़ा,
तनिक– थोडा सा,	अवाक्– न बोलने की स्थिति	कांति–शोभा, चमक
नंबरदार– गाँव का मुखिया	ताल्लुकेदार– किसी भू–भाग का जमींदार	

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. भैंस का दो सेर ताजा दूध सवेरे उठकर कौन पी जाता था–
   (क) भूप सिंह (ख) बेनीमाधव सिंह
   (ग) लाल बिहारी सिंह (घ) श्रीकंठ सिंह ( )
2. लालबिहारी फूट–फूट कर रोने लगा था–
   (क) गलती के अहसास से (ख) भाई की बात सुनकर
   (ग) घर से जाने की बात से
   (घ) घर में रहने की बात से ( )
3. ''वह बड़े घर की बेटी है, तो हम भी कोई ऐसे–वैसे नहीं हैं।'' लालबिहारी के इस कथन में कौनसा

मनोभाव व्यक्त हुआ है–

(क) अपनत्व (ख) अहम्

(ग) अकुलाहट (घ) ईर्ष्या ( )

4. ''मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि तुम्हारी ओर से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं।'' यह वाक्य आनंदी के किस भाव को व्यक्त करता है–

(क) स्नेह भाव (ख) एकत्व भाव

(ग) पश्चात्ताप का भाव (घ) क्षमा भाव ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. आनंदी का अपने पति से किस बात पर विरोध था ?
2. श्रीकंठ का गाँव के लोग अधिक सम्मान क्यों करते थे ?
3. ''मैके में चाहे घी की नदी बहती हो।'' लाल बिहारी के इस कथन के उत्तर में आनंदी ने क्या कहा था ?
4. आजकल की स्त्रियों की किस मनोवृत्ति की ओर कहानीकार ने संकेत किया है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. 'बड़े घर की बेटी' कहानी का उद्देश्य बताइये।
2. 'उद्विग्नता के कारण पलक तक नहीं झपकी' यह उद्विग्नता किसको, किस बात से हुई थी ?
3. आनंदी अन्य स्त्रियों की तरह अपने पति के किस विचार से सहमत नहीं थी? इसके संबंध में उसकी क्या धारणा थी ?
4. लालबिहारी के प्रति स्नेह रखते हुए भी श्रीकंठ क्रोधित क्यों हो उठा था ?

निबंधात्मक प्रश्न–

1. 'बड़े घर की बेटी' शीर्षक कहानी के नामकरण की सार्थकता पर विचार कीजिए।
2. आपकी दृष्टि में इस पाठ में कौन सी बात सबसे गलत हुई ? इस बात की चर्चा करते हुए अपने विचार लिखें कि आप उस बात को बुरी क्यों मानते हैं ? विस्तृत विवेचन कीजिए।
3. ''घर की छोटी–छोटी बातें सदस्यों के अहम् के कारण उसके विघटन का कारण बन सकती है।'' बड़े घर की बेटी कहानी के आधार पर इस कथन की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

*****

खेल

–जैनेन्द्र कुमार

लेखक–परिचय

कहानीकार जैनेन्द्र का जन्म सन् 1905 ई. में हुआ। हिन्दी कहानी के परम्परागत शिल्प के स्थान पर उसे नवीन धरातल प्रदान किया। स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म जगत की ओर ले गए। मानव की आन्तरिक समस्याओं का सूक्ष्म अंकन किया। इससे इनकी कहानियों को नई अन्तर्दृष्टि, संवेदनशीलता और दार्शनिक गहराई प्राप्त हुई। उन्होंने मानव के असामान्य व्यवहार की मानसिक प्रतिक्रियाओं को विश्लेषित किया। जैनेन्द्र अन्तर्द्वन्द्व के द्वारा मानवीय उदात्त भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति करते हैं। इनकी कहानियों में घटनाओं के स्थान पर चरित्र–चित्रण और शैली पर अधिक जोर दिया गया है। जीवन के साधारण संकेतों से ही वे कथा का मार्ग प्रशस्त करते हैं, इस रूप में वे पात्रों के चरित्र–चित्रण पर अधिक जोर न देकर उनकी विशिष्ट गतियों को उद्घाटित करते हैं।

जैनेन्द्र की कहानियों में व्यक्ति–सत्य के साथ अहं का विसर्जन भी है और उनके मूल में सहज मानवीय–वृतियाँ हैं, 'खेल', 'एक कैदी', 'पाजेब', 'जाह्नवी', 'अपना–अपना भाग्य', 'नीलम देश की राजकन्या' और 'एक गौ' कहानियों में इसे देखा जा सकता है।

पाठ–परिचय

'खेल' कहानी में बालकों की क्रीड़ाओं का सहज और स्वाभाविक चित्रण है। उनका परस्पर रूठना तथा मनाना हृदय–स्पर्शी है। बालकों के पवित्र एवं निश्छल भावों की अभिव्यक्ति उनके रूठने मनाने में होती है। उनका सहज स्नेह अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। कहानी के संवाद बालमन के अनुरूप हैं, और कहानी का अन्त प्रभावोत्पादक है।

**** ****

मौन–मुग्ध संध्या स्मित प्रकाश से हँस रही थी। उस समय गंगा के निर्जन बालुकास्थल पर एक बालक और बालिका, अपने को और सारे विश्व को भूल, गंगातट के बालू और पानी को अपना एकमात्र आत्मीय बना उनसे खिलवाड़ कर रहे थे।

प्रकृति इन निर्दोष परमात्म–खण्डों को निस्तब्ध और निर्निमेष निहार रही थी। बालक कहीं से एक लकड़ी लाकर तट के जल को छटाछट उछाल रहा था। पानी मानो चोट खाकर भी बालक से मित्रता जोड़ने के लिए विह्वल हो उछल रहा था। बालिका अपने एक पैर पर रेत जमाकर और थाप कर एक भाड़

बना रही थी।

बनाते–बनाते भाड़ से बालिका बोली, ''देख, ठीक नहीं बना, तो मैं तुझे फोड़ दूंगी।'' फिर बड़े प्यार से थपका थपकाकर उसे ठीक करने लगी। सोचती जाती थी–इसके ऊपर मैं एक कुटी बनाऊंगी–वह मेरी कुटी होगी। और मनोहर ? नहीं, वह कुटी में नहीं रहेगा, बाहर खड़ा खड़ा भाड़ में पत्ते झोंकेगा। जब वह हार जाएगा, बहुत कहेगा, तब मैं फिर उसे अपनी कुटी के भीतर ले लूँगी।

मनोहर उधर अपने पानी से हिल मिलकर खेल रहा था। उसे क्या मालूम कि यहाँ अकारण ही उस पर रोष और अनुग्रह किया जा रहा है।

बालिका सोच रही थी–मनोहर कैसा अच्छा है। पर वह दंगई बड़ा है। हमें छेड़ता ही रहता है अब के दंगा करेगा तो हम उसे कुटी में साझी नहीं करेंगे। साझी होने को कहेगा तो उससे शर्त करवा लेंगे तब साझी करेंगे।

बालिका सुरबाला सातवें वर्ष में थी। मनोहर कोई दो साल उससे बड़ा था।

बालिका को अचानक ध्यान आया–भाड़ की छत तो गरम होगी। उस पर मनोहर रहेगा कैसे? मैं तो रह जाऊंगी, पर मनोहर बेचारा कैसे सहेगा ? फिर सोचा–उससे मैं कह दूंगी–भई छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत जाओ। पर वह अगर नहीं माना ? मेरे पास होने को वह आया ही–तो ? मैं कहूँगी–भई ठहरो, मैं ही बाहर आती हूँ–पर वह मेरे पास आने की जिद करेगा क्या......? जरूर करेगा, वह बड़ा हठी है–। पर मैं उसे आने नहीं दूँगी। बेचारा तपेगा........ भला कुछ ठीक है। ज्यादा कहेगा, मैं धक्का दे दूँगी और कहूँगी–अरे, जल जाएगा मूर्ख! यह सोचने पर उसे बड़ा मजा–सा आया, पर उसका मुँह सूख गया। उसे मानो सचमुच ही धक्का खाकर मनोहर के गिरने का अद्‌भुत और करुण दृश्य घटित की भाँति प्रत्यक्ष हो गया।

बालिका ने दो एक पक्के हाथ भाड़ पर लगाकर देखा। भाड़ अब बिलकुल बन गया था। माँ जिस सतर्क सावधानी से अपने को हटाकर नवजात शिशु को बिछौने पर लेटा छोड़ती है, वैसे ही सुरबाला ने अपना पाँव धीरे–धीरे भाड़ के नीचे से खींचना शुरू किया। धीरे–धीरे,–धीरे–धीरे। इस क्रिया में वह सचमुच भाड़ को पुचकारती सी जाती थी। उसके पैर पर ही तो भाड़ टिका है पैर का आश्रय हट जाने पर बेचारा कहीं टूट न पड़े। पैर साफ निकालने पर भाड़ अब ज्यों का त्यों टिका रह गया, तब बालिका एक बार आह्‌लाद से नाच उठी।

बालिका एकबारगी ही मनोहर को इस अलौकिक कारीगरी वाले भाड़ के दर्शन के लिए दौड़कर खींच लाने को उद्यत हो गई। मूर्ख लड़का पानी से उलझ रहा है। यहाँ कैसी जबर्दस्त कारगुजारी हुई है, सो नहीं देखता। ऐसा पक्का भाड़ उसने कहीं देखा भी है।

पर सोचा–अभी नहीं, पहले कुटी तो बना लूँ यह सोचकर बालिका ने रेत की एक चुटकी ली और बड़े हौले से भाड़ के सिर पर छोड़ दी। फिर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी। इस प्रकार चार चुटकी रेत धीरे–धीरे छोड़कर सुरबाला ने भाड़ के सिर पर अपनी कुटी तैयार कर ली।

भाड़ तैयार हो गया। पर पड़ोस का भाड़ जब बालिका ने पूरा–पूरा याद किया तो पता चला, एक कमी रह गई–धुँआ कहाँ से होकर निकलेगा? तनिक सोचकर उसने एक सींक टेढ़ी करके उसके शीर्ष पर गाड़ दी। बस ब्रह्मांड की सबसे संपूर्ण संपदा और विश्व की सबसे सुन्दर वस्तु तैयार हो गई।

वह उस समय उजड्ड मनोहर को इस अपूर्व स्थापत्य का दर्शन कराएगी, पर अभी जरा थोड़ा देख तो ले और। सुरबाला मुँह बाए आँखें स्थिर करके इस भाड़–श्रेष्ठ को देख देखकर विस्मित और पुलकित होने लगी। परमात्मा कहाँ विराजते हैं, कोई बाला से पूछे, तो वह बताए इस भाड़ के जादू में।

मनोहर अपनी सुरी–सरो–सुर्री की याद कर पानी से नाता तोड़ हाथ की लकड़ी भरपूर जोर से गंगा की धारा में फेंककर जब मुड़ा, तब श्री सुरबाला देवी एकटक अपनी परमात्म–लीला के जादू को बूझने और सराहने में लगी हुई थी।

मनोहर ने बाला की दृष्टि का अनुसरण कर देखा–देवीजी बिलकुल अपने भाड़ में अटकी हुई है। उसने जोर से कहकहा लगाकर एक लात में भाड़ का काम तमाम कर दिया।

न जाने क्या किला फतह किया हो, ऐसे गर्व से भरकर निर्दयी मनोहर चिल्लाया–सुर्रो रानी!

सुर्रो रानी मूक खड़ी थी। उसके मुँह पर जहाँ अभी एक विशुद्ध रस था, वहाँ अब एक शून्य फैल गया। रानी के सामने साक्षात् एक स्वर्ग आ खड़ा हुआ था। वह उसी के हाथ का बनाया हुआ था और वह किसी एक को उसकी एक एक मनोरमता और स्वर्गीयता का दर्शन कराना चाहती थी। हा, हंत! वही व्यक्ति आया और उसने अपनी लात से उसे तोड़ फोड़ डाला! रानी हमारी बड़ी व्यथा से भर गई।

हमारे विद्वान पाठकों में से कोई होता तो उन मूर्खों को समझाता–संसार क्षण–भंगुर है। इसमें दुःख क्या और सुख क्या! जो जिससे बना है, उसे उसी में लय हो जाना है। उसमें शोक और उद्वेग की क्या बात है? यह संसार जल का बुलबुला है, फूटकर एक समय जल में ही खो जाना उसकी सार्थकता है। जो इतना नहीं समझते वे वृथा है। री, मूर्ख लड़की, तू समझ! सब ब्रह्मांड ब्रह्ममय है। उसी में लीन हो जाने के अर्थ है। इससे तू किसलिए व्यर्थ सह रही है? रेत का तेरा भाड़ तेरा कुछ था भी ? मन का तमाशा था। बस हुआ, और लुप्त हो गया। रेत में से होकर रेत में मिल गया। इस पर खेद मत कर, इससे शिक्षा ले। जिसने लात मारकर उसे तोड़ा है, वह तो परमात्मा का साधन मात्र है। परमात्मा तुझे गंभीर शिक्षा देना चाहते है। लड़की, तू मूर्ख क्यों बनती है ? परमात्मा की इस शिक्षा को समझ और उस द्वारा उन तक पहुँचने का प्रयास कर, आदि आदि।

पर बेचारी बालिका का दुर्भाग्य, कोई विज्ञ धीमान् पंडित तत्त्वोपदेश के लिए उस गंगा तट पर नहीं पहुंच सके। हमें तो यह भी संदेह है कि सुर्री एकदम इतनी जड़ मूर्खा है कि यदि कोई परोपकाररत पंडित परमात्म–निर्देश से वहाँ पहुँचकर उपदेश देने भी लगते, तो वह उनकी बात को समझती तो क्या, सुनती तक नहीं। शायद मुँह बिचकाए रहती। पर, अब तो वहाँ निर्बुद्धि, शठ मनोहर के सिवा कोई नहीं हैं, और मनोहर विश्वतत्त्व की एक भी बात नहीं जानता। उसका मन जाने कैसा हो रहा है? जैसे कोई उसे भीतर ही भीतर मसोसकर निचोड़ डाल रहा है लेकिन उसने बनकर कहा, ''सुरो, दुत्त पगली! रूठती है?''

सुरबाला वैसी ही खड़ी रही।

''सुरी, रूठती क्यों है?''

बाला तनिक न हिली।

''सुरी! सुरी! – ओ सुरी!'

अब बनना न हो सका। मनोहर की आवाज हठात् कंपी सी निकली।

सुरबाला अब और मुँह फेरकर खड़ी हो गई। स्वर के इस कंपन का सामना शायद उससे न हो सका।

''सुरी– ओ सुरिया! मैं मनोहर हूँ–– मनोहर। मुझे मारती नहीं?''

यह मनोहर ने उसके पीठ पीछे से कहा और ऐसे कहा, जैसे वह यह प्रकट करना चाहता है कि वह रो नहीं रहा है।

''हम नहीं बोलते।'' बालिका से बिना बोले रहा न गया। उसका भाड़ शायद शून्य में विलीन हो

गया। उसका स्थान और सुरबाला की सारी दुनिया का स्थान, काँपती हुई मनोहर की आवाज ने ले लिया।

मनोहर ने बड़ा बल लगाकर कहा, ''सुर्री, मनोहर तेरी पीछे खड़ा है। वह बड़ा दुष्ट है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती, मार क्यों नहीं देती? उसे एक थप्पड़ लगा—वह अब कभी कसूर नहीं करेगा।''

बाला ने कड़ककर कहा, ''चुप रहो जी!''

''चुप रहता हूँ, पर मुझे देखोगी भी नहीं?''

''नहीं देखती।''

''अच्छा मत देखो। मत ही देखो। मैं अब कभी सामने न आऊँगा, मैं इसी लायक हूँ।

''कह दिया तुमसे, तुम चुप रहो। हम नहीं बोलते।'' बालिका में व्यथा और क्रोध कभी का खत्म हो चुका था। वह तो पिघलकर बह चुका था। यह कुछ और ही भाव था। यह एक उल्लास था जो व्याजकोप का रूप धर रहा था। दूसरे शब्दों में यह स्त्रीत्व था।

मनोहर बोला, ''लो सुर्री, मैं नहीं बोलता। मैं बैठा जाता हूँ। यहीं बैठा रहूँगा। तुम जब तक न कहोगी, न उठूँगा, न बोलूँगा।

मनोहर चुप बैठ गया। कुछ क्षण बाद हारकर सुरबाला बोली, ''हमारा भाड़ क्यों तोड़ा जी ? हमारा भाड़ बनाके दो।''

''लो, अभी लो।''

''हम वैसा ही लेंगे।''

''वैसा ही लो, उससे भी अच्छा।''

''उस पै हमारी कुटी थी, उस पै धुँए का रास्ता था।''

''लो सब लो। तुम बताती जाओ, मैं बनाता जाऊँ।''

''हम नहीं बताएंगे। तुमने क्यों तोड़ा? तुमने तोड़ा, तुम्ही बनाओ!''

''अच्छा, पर तुम इधर देखो तो!''

''हम नहीं देखते, पहले भाड़ बनाके दो।''

मनोहर ने तभी खुशी खुशी एक भाड़ बनाकर तैयार किया। कहा, ''लो भाड़ बन गया।''

''बन गया?''

''हाँ।''

''धुँए का रास्ता बनाया? कुटी बनाई?''

''सो कैसे बनाऊँ—बताओ तो।''

''पहले बनाओ, तब बताऊँगी।''

भाड़ के सिर पर एक सींक लगाकर और एक एक पत्ते की ओट लगाकर कहा, ''बना दिया।''

तुरंत मुड़कर सुरबाला ने कहा, ''अच्छा दिखाओ।''

''सींक ठीक नहीं लगी जी'', ''पत्ता ऐसे लगेगा'' आदि—आदि संशोधन कर चुकने पर मनोहर को हुक्म हुआ—

''थोड़ा पानी लाओ, भाड़ के सिर पर डालेंगे।''

मनोहर पानी लाया।

गंगाजल से कर पात्रों द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुर्रो रानी ने एक लात से भाड़ के सिर को चकनाचूर कर दिया।

सुरबाला रानी हँसी से नाच उठी। सोचकर उत्फुल्लता से कहकहा लगाने लगा। उस निर्जन प्रांत में वह निर्मल शिशु–हास्य–रव लहरें लेता हुआ व्याप्त हो गया। सूरज महाराज बालकों जैसे–लाल–लाल मुँह से गुलाबी–गुलाबी हँसी हँस रहे थे। गंगा मानो जान बूझकर किलकारियाँ मार रही थी।

और–और वे लम्बे ऊँचे–ऊँचे दिग्गज पेड़ दार्शनिक पंडितों की भाँति हास्य की सार शून्यता पर मानो मन–ही–मन गंभीर तत्त्वलोचन कर हँसी में भूले हुए मूर्खों पर थोड़ी दया बख्शना चाह रहे थे।

शब्दार्थ–

स्मित – मुस्कराहट,	निर्निमेष – अपलक,	साझी – भागीदार,
विह्वल–व्याकुल (घबराया हुआ),	प्रत्यक्ष – आँखों के सामने,	उद्यत – तैयार,
अलौकिक – अनोखा,	व्याजकोप–क्रोध का बहाना,	विज्ञ – विद्वान,
धीमान् – बुद्धिमान,	शठ – मूर्ख	विलीन – मिल जाना,
तत्त्वोपदेशक–रहस्यात्मक ज्ञान का उपदेश देने वाला,	करपात्र – अंजलि,	रव – आवाज (स्वर),
आश्रय – सहारा,	आह्लाद – प्रसन्नता,	स्थापत्य – भवन निर्माण,
व्यथा – दु:ख,	क्षण भंगुर – पलभर में नष्ट होने वाला (अनित्य)।	

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सुरबाला के भाड़ को फोड़कर मनोहर को कैसा लगा–
   (क) जैसे उसने दौड़ जीत ली हो।
   (ख) जैसे उसने किला फतह कर लिया हो।
   (ग) जैसे उसने दौलत प्राप्त कर ली हो।
   (घ) जैसे उसका सबकुछ लूट गया हो। ( )
2. ''सुरी.........................ओ सुरिया। मैं मनोहर हूँ.........मनोहर। मुझे मारती नहीं ?'' मनोहर के इस कथन से क्या भाव प्रकट होता है–
   (क) खेद और ग्लानि (ख) स्नेह
   (ग) ऊब और निराशा (घ) विरक्ति ( )
3. सुरौ रानी मूक खड़ी थी। उसके मुँह पर जहाँ अभी एक विशुद्ध रस था, वहाँ अब एक शून्य फैल गया। कारण था–
   (क) मनोहर का झगड़ा
   (ख) मनोहर द्वारा भाड़ को तोड़ डालना
   (ग) मनोहर द्वारा चिढ़ाना
   (घ) मनोहर के अपशब्द सुनना ( )

अतिलघूत्तरात्मक–

1. सुरबाला और मनोहर की उम्र क्या थी ?
2. सुरबाला ने मिट्टी से क्या बनाया था ?

3. ''सुरबाला हँसी से नाच उठी। मनोहर उत्फुल्लता से कहकहा लगाने लगा।'' दोनों की प्रसन्नता का क्या कारण था ?
4. ''कह दिया तुमसे, तुम चुप रहो। हम नहीं बोलते।'' यह वाक्य किसने, किसको और कब कहे ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. सुरबाला के व्यक्तित्व में नारीत्व झलकता प्रतीत होता है। उसे स्पष्ट कीजिए।
2. मनोहर की कांपती हुई आवाज सुनकर सुरबाला पर क्या प्रतिक्रिया हुई ?
3. 'खेल' कहानी के आधार पर बच्चों की बदला लेने की प्रवृति पर प्रकाश डालिए।
4. ''बच्चे देर तक क्रोध को बनाए रखकर रूठे नहीं रहते।'' 'खेल' कहानी के आधार पर इस बाल मनोविज्ञान को समझाइये।
5. ''बच्चों में कल्पनाशीलता होती है।'' सुरबाला के व्यवहार का आधार लेकर बताइये।

निबंधात्मक प्रश्न–

1. 'खेल' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए समीक्षा कीजिए।
2. सिद्ध कीजिए कि जैनेन्द्र की 'खेल' कहानी बाल मनोविज्ञान का निदर्शन कराती है।
3. घर लौटते समय सुरबाला और मनोहर के मध्य क्या बातचीत हुई होगी, कल्पना के आधार पर उत्तर दीजिए।
4. 'खेल' कहानी के आधार पर सुरबाला और मनोहर के चरित्र की विशेषताएं लिखते हुए उनकी तुलना कीजिए।

*****

शरणदाता

—अज्ञेय

लेखक—परिचय

अज्ञेय का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय है। अज्ञेय का जन्म 1911 में कसिंया (देवरिया) में हुआ।

अज्ञेय विशाल भारत, सैनिक और प्रतीक के सम्पादक रहे। दिनमान (समाचार साप्ताहिक) का संपादन भी किया। आकाशवाणी और सेना में भी नौकरी की। देश—विदेश की अनेक बार यात्राएं कीं। अज्ञेय हिन्दी साहित्य में आधुनिकता और नए प्रयोग के प्रणेता रहे है। विचारों के साथ—साथ उनकी शैली में भी नवीनता थी।

अज्ञेय ने उपन्यास, कहानी, यात्रा वर्णन, कविता, निबन्ध सभी विधाओं में रचना की। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में 'शेखर एक जीवनी' (दो भाग) 'नदी के द्वीप', 'अपने—अपने अजनबी' (उपन्यास) 'अरे, यायावर रहेगा याद', 'एक बूंद सहसा उछली' व 'आत्मनेपद' (निबंध संग्रह)। 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'आँगन के पार द्वार' (कविता संग्रह) 'विपथगा', 'कोठरी की बात', 'जयदोल', 'ये तेरे प्रतिरूप', 'शरणार्थी', 'परम्परा' (कहानी संग्रह) दो भागों में कहानियाँ संकलित हैं।

पाठ—परिचय

प्रस्तुत कहानी देश के बँटवारे के समय की कहानी है। हिन्दू—मुसलमान आपस में प्रेम और भाईचारे से रहते थे। एक मुसलमान ने अपने हिन्दू मित्र को भारत जाने से रोका। उत्पातियों—दंगाइयों से उसकी रक्षा करने हेतु हिन्दू मित्र को अपने घर में शरण दी। वह भी ऐसे समय में जब कि सब तरफ आग थी, सांप्रदायिकता का तूफान था। सब कुछ जल रहा था। अपने घर में खतरे की आशंका से अपने हिन्दू मित्र को अन्यत्र अपने दूसरे मित्र के यहाँ पहुँचा दिया। सब जन एक से नहीं होते। शरणागत की प्राण गंवा कर भी रक्षा की जाती है। शरणदाता शरणागत की जान लेने का प्रयास नहीं करता।

**** ****

''यह कभी हो ही नहीं सकता, देविन्दरलाल जी!''

रफीकुद्दीन वकील की वाणी का आग्रह था। चेहरे पर आग्रह के साथ चिन्ता और कुछ व्यथा का भाव। उन्होंने फिर दुहराया, ''यह कभी नहीं हो सकता, देविन्दरलाल जी!''

देविन्दरलाल ने उसके इस आग्रह को जैसे कबूलते हुए, पर अपनी लाचारी बताते हुए कहा, ''सब तो चले गए। आपसे मुझे कोई डर नहीं बल्कि आपका तो सहारा है, लेकिन आप जानते हैं, जब एक बार लोगों को डर जकड़ लेता है, और भगदड़ पड़ जाती है तब फिजा ही कुछ और हो जाती है। हर कोई हर किसी को शुबहे की नजर से देखता है, और ख़ाहमख़ाह दुश्मन हो जाता है। आप तो मोहल्ले के सरवर हैं, पर बाहर से आने–जाने वालों का क्या ठिकाणा! आप तो देख ही रहे हैं, कैसी–कैसी वारदातें हो रही हैं........''

रफीकुद्दीन ने बात काटते हुए कहा, ''नहीं साहब, हमारी नाक कट जाएगी। कोई बात है भला कि आप घरबार छोड़कर अपने ही शहर में पनाहगर्जी हो जाएं! हम तो आपको जाने न देंगे, बल्कि जबरदस्ती रोक लेंगे। मैं तो इसे मेजारिटी का फर्ज मानता हूँ कि वह माइनारिटी की हिफाजत करे तो उन्हें घर छोड़–छोड़कर भागने न दे। हम पड़ोसी की हिफाजत न कर सके तो मुल्क की हिफाजत क्या ख़ाक करेंगे। और मुझे पूरा यकीन है कि बाहर की तो खैर बात ही क्या, पंजाब में ही कई हिन्दू भी, जहाँ उनकी बहुतायत है, ऐसा ही सोच और कर रहे होंगे। आप न जाइए, न जाइए। आपकी हिफाजत की जिम्मेदारी मेरे सिर, बस!''

देविन्दरलाल के पड़ोस के हिन्दू परिवार धीरे–धीरे एक–एक करके खिसक गए थे। होता यह कि दोपहर–शाम जब कभी साक्षात् होता, देविन्दरलाल पूछते, ''कहो लालाजी (या बाऊजी या पंडज्जी), क्या सलाह बणायी है आपने?'' और वह उत्तर देते, ''जी सलाह क्या बणाणी है, यहीं रह रहे हैं, देखी जाएगी...'' पर शाम को या अगले दिन सवेरे देविन्दरलाल देखते हैं कि वह चुपचाप जरूरी सामान लेकर कहीं खिसक गए हैं, कोई लाहौर से बाहर, कोई लाहौर में ही हिन्दुओं के मोहल्ले में। और अन्त में यह परिस्थिति आ गई थी कि अब उसके दाहिनी ओर चार मकान खाली छोड़कर एक मुसलमान गूजर का अहाता पड़ता था जिसमें एक ओर गूजर की भैंस और दूसरी ओर कई छोटे–मोटे मुसलमान कारीगर रहते थे, बाईं और भी देविन्दर और रफीकुद्दीन के मकानों के बीच मे मकान खाली थे और रफीकुद्दीन के मकान के बाद मौजंग का अड्डा पड़ता था, जिसके बाद तो विशुद्ध मुसलमान बस्ती थी। देविन्दरलाल और रफीकुद्दीन में पुरानी दोस्ती थी, और एक–एक आदमी के जाने पर उनसे चर्चा होती थी। अन्त में जब एक दिन देविन्दरलाल ने बताया कि वह भी चले जाने की बात पर विचार कर रहे हैं, तब रफीकुद्दीन को धक्का लगा और उन्होंने व्यथित स्वर में कहा, ''देविन्दरलाल जी, आप भी!''

रफीकुद्दीन का आश्वासन पाकर देविन्दरलाल रह गए। तब यह तय हुआ कि अगर खुदा न करे कोई खतरे की बात हुई ही, तो रफीकुद्दीन उन्हें पहले खबर कर देंगे और हिफाजत का इन्तजाम कर देंगे–चाहे जैसे हो। देविन्दरलाल की स्त्री तो कुछ दिन पहले ही जालंधर मायके चली गई थी, उसे लिख दिया गया कि अभी न आये, वहीं रहे। रह गए देविन्दर और उनका पहाड़िया नौकर सन्तू।

किन्तु व्यवस्था बहुत दिन नहीं चली। चौथे ही दिन सवेरे उठकर उन्होंने देखा कि सन्तू भाग गया है। अपने हाथों चाय बनाकर उन्होंने पी, धोने को बर्तन उठा रहे थे कि रफीकुद्दीन ने आकर खबर दी, सारे शहर में मार–काट हो रही है और थोड़े में मौजंग में भी हत्यारों के गिरोह बंध–बंधकर निकलेंगे कहीं जाने का समय नहीं है, देविन्दरलाल अपना जरूरी और कीमती सामान ले लें और उनके साथ उनके घर चलें। यह बला टल जाए, तो फिर लौट आएंगे.....

'कीमती' सामान कुछ था नहीं। गहना–छल्ला सब स्त्री के साथ जालन्धर चला गया था, रुपया थोड़ा बहुत बैंक में था, और ज्यादा फैलाव कुछ उन्होंने किया नहीं था। यों गृहस्थ को अपनी गिरस्ती की हर चीज कीमती मालूम होती है....... देविन्दरलाल घण्टे भर बाद अपने ट्रंक–बिस्तर के साथ रफीकुद्दीन

के यहाँ जा पहुँचे।

तीसरे पहर उन्होंने देखा, हुल्लड़ मौजंग में आ पहुँचा है। शाम होते–होते उनकी निर्निमेष आँखों के सामने उनके घर का ताला तोड़ा गया और जो कुछ था लुट गया। रात को जहाँ–तहाँ लपटें उठने लगी और भादों की उमस धुआँ खाकर और भी गलघोंटू हो गई........

रफीकुद्दीन भी आँखों में पराजय लिये चुपचाप देखते रहे। केवल एक बार उन्होंने कहा, 'यह दिन भी देखने को–और आजादी के नाम पर! या अल्लाह!'

लेकिन खुदा जिसे घर से निकालता है। उसे फिर गली में भी पनाह नहीं देता।

देविन्दरलाल घर के बाहर निकल ही न सकते रफीकुद्दीन ही आते–जाते। काम करने का तो वातावरण ही नहीं था, वे घूमघाम आते, बाजार कर आते और शहर की खबर ले आते, देविन्दरलाल को सुनाते और फिर दोनों बहुत देर तक देश के भविष्य की आलोचना किया करते। देविन्दर ने पहले तो लक्ष्य नहीं किया, लेकिन बाद में पहचानने लगा कि रफीकुद्दीन की बातों में कुछ चिन्ता का, और कुछ एक और पीड़ा का भी स्वर, जिसे वह नाम नहीं दे सकता–थकान ? उदासी ? विरक्ति ? पराजय? न जाने.......

शहर तो वीरान हो गया था। जहाँ–तहाँ लाशें सड़ने लगी थीं, घर लुट चुके थे और अब जल रहे थे। शहर के नामी डॉक्टर के पास कुछ प्रतिष्ठित लोग गये थे यह प्रार्थना लेकर कि वह मोहल्ले में जाएं। उनकी सब लोग इज्जत करते हैं, इसलिए उनके समझाने का असर होगा, और मरीज भी वह देख सकेंगे। वह दो मुसलमान नेताओं के साथ निकले। दो–तीन मोहल्ले घूमकर मुसलमानों की बस्ती में एक मरीज को देखने के लिए स्टैथस्कोप निकालकर मरीज पर झुके थे कि मरीज के ही एक रिश्तेदार ने पीठ में छुरा भोंक दिया.....

हिन्दू मोहल्ले में रेलवे के एक कर्मचारी ने बहुत से निराश्रितों को अपने घर जगह दी थी, कि वे निराश्रित उसके घर टिके हैं, हो सके तो उनके घरों और माल की हिफाजत की जाए। पुलिस ने आकर शरणागतों के साथ उसे और उसके घर की स्त्रियों को गिरफ्तार कर लिया और ले गई। पीछे घर पर हमला हुआ, लूट हुई और आग लगा दी गई। तीन दिन बाद उसे और उसके परिवार को थाने से छोड़ा गया और हिफाजत के लिए हथियारबंद पुलिस के दो सिपाही साथ किए गए। थाने से पचास कदम के फासले पर पुलिस वालों ने अचानक बन्दूक उठाकर उस पर और उसके परिवार पर गोली चलाई। वह और तीन स्त्रियाँ मारी गईं। उसकी माँ और स्त्री घायल हो कर गिर गईं और सड़क पर पड़ी रहीं......

विषाक्त वातावरण, द्वेष और घृणा की चाबुक से तड़फड़ाते हुए हिंसा के घोड़े, विष फैलाने को सम्प्रदायों के अपने संगठन और उसे भड़काने को पुलिस और नौकरशाही देविन्दरलाल को अचानक लगता कि वह और रफीकुद्दीन ही गलत हैं जो कि बैठे हुए हैं, जब कि सब कुछ भड़क रहा है। उफन रहा है, झुलस और जल रहा है..... और वह लक्ष्य करता कि स्पष्ट स्वर जो वह रफीकुद्दीन की बातों में पाता था, धीरे–धीरे कुछ स्पष्ट होता जाता है– एक लज्जित सी रूखाई का स्वर.......

हिन्दुस्तान–पाकिस्तान की अनुमानित सीमा के पास एक गाँव में कई सौ मुसलमानों ने सिखों के गाँव में शरण पाई। अन्त में जब आस–पास में कई गाँव के और अमृतसर के लोगों के दबाव ने उस गाँव में उनके लिए फिर आसन्न संकट की स्थिति पैदा कर दी, तब गाँव के लोगों ने अपने मेहमानों को अमृतसर स्टेशन पहुँचाने का निश्चय किया जहाँ से वे सुरक्षित मुसलमान इलाके में जा सकें, और दो–ढाई सौ आदमी किरपानें निकालकर उन्हें घेरे में लेकर स्टेशन पहुँचा आए–किसी को क्षति नहीं पहुँची.....

घटना सुनकर रफीकुद्दीन ने कहा, "आखिर तो लाचारी होती है, अकेले इन्सान को झुकना ही पड़ता है। यहाँ तो पूरा गाँव था फिर भी उन्हें हारना पड़ा। लेकिन आखिर तक उन्होंने निबाहा, इसकी

दाद देनी चाहिए। उन्हें पहुँचा आए–''

देविन्दरलाल ने हामी भरी। लेकिन सहसा पहला वाक्य उनके स्मृति पटल पर उभर आया–''आखिर तो लाचारी होती है–अकेले इन्सान को झुकना ही पड़ता है।'' उन्होंने एक तीखी नजर रफीकुद्दीन की ओर देखा, पर वे कुछ बोले नहीं।

अपराह्न में छः सात आदमी रफीकुद्दीन से मिलने आये। रफीकुद्दीन ने उन्हें अपनी बैठक में ले जाकर दरवाजे बन्द कर लिए। डेढ़–दो घंटे तक बातें हुई। सारी बात प्रायः धीरे–धीरे हुई, बीच–बीच में कोई स्वर ऊंचा उठ जाता, और एक–आध शब्द देविन्दरलाल के कान में पड़ जाता–'बेवकूफी', 'गद्दारी', 'इस्लाम'.... वाक्यों को पूरा करने की कोशिश उन्होंने आयासपूर्वक नहीं की। दो घंटे बाद जब उनको विदा करके रफीकुद्दीन बैठक से निकलकर आए, तब भी उनसे लपककर पूछने की स्वाभाविक प्रेरणा को उन्होंने दबाया। पर जब रफीकुद्दीन बिना एक शब्द कहे भीतर जाने लगे तब उनसे न रहा गया और उन्होंने आग्रह के स्वर में पूछा–''क्या बात है रफीक साहब, खैर तो है?''

रफीकुद्दीन ने मुँह उठाकर एक बार उनकी ओर देखा, बोले नहीं। फिर आँखें झुका लीं।

अब देविन्दरलाल ने कहा, ''मैं समझता हूँ, मेरी वजह से आपको जलील होना पड़ रहा है और खतरा उठाना पड़ रहा है सो अलग? लेकिन आप मुझे जाने दीजिए। मेरे लिए आप जोखिम में न पड़ें। आपने जो कुछ किया है उसके लिए मैं बहुत शुक्रगुजार हूँ आपका एहसान....''

रफीकुद्दीन ने दोनों हाथ देविन्दरलाल के कन्धों पर रख दिये। कहा, ''देविन्दरलाल जी।'' उनकी साँस तेज चलने लगी। फिर वह सहसा भीतर चले गए।

लेकिन खाने के वक्त देविन्दरलाल ने फिर सवाल उठाया। बोले, ''आप खुशी से न जाने देंगे तो मैं चुपचाप खिसक जाऊँगा। आप सच–सच बताइए, आपसे उन्होंने कहा क्या?''

''धमकियाँ देते रहे और क्या?''

''फिर भी क्या धमकी आखिर....''

''धमकी की भी 'क्या' होती है क्या? उन्हें शिकार चाहिए–हल्ला करके न मिलेगा तो आग लगाकर लेंगे।''

''ऐसा! तभी तो मैं कहता हूँ मैं चला। मैं इस वक्त अकेला आदमी हूँ, कहीं निकल ही जाऊँगा। आप घरबार वाले आदमी–ये लोग तो सब तबाह कर डालने पर तुले हैं।''

''गुण्डे बिलकुल!''

''आज ही चला जाऊँगा।''

''यह कैसे हो सकता है? आखिर आपको चले जाने से हमीं ने रोका था, हमारी भी तो कुछ जिम्मेदारी है–''

''आपने भला चाहकर ही रोका था–उससे आगे कोई जिम्मेदारी नहीं है–''

''आप जाएँगे कहाँ–''

''देखा जाएगा–''

''नहीं, यह नामुमकिन बात है।''

किन्तु बहस के बाद तय हुआ यही कि देविन्दरलाल वहाँ से टल जाएँगे। रफीकुद्दीन और कहीं पड़ोस में उनके एक मुसलमान दोस्त के यहाँ छिपकर रहने का प्रबन्ध कर देंगे–वहाँ तकलीफ तो होगी, पर खतरा नहीं होगा, क्योंकि देविन्दरलाल घर में नहीं रहेंगे। वहाँ पर रहकर जान की हिफाजत तो होगी, तब तक कुछ और उपाय सोचा जाएगा निकलने का.....

देविन्दरलाल शेख अताउल्लाह के अहाते के अन्दर पिछली तरफ पेड़ों के झुरमुट की आड़ में बनी हुई एक गैराज में पहुँच गए। ठीक गैराज में तो नहीं, गैराज की बगल में एक कोठरी थी, जिसके सामने दीवारों में घिरा हुआ एक छोटा सा आँगन था। पहले शायद यह ड्राइवर के रहने के काम आती हो। कोठरी में सामने और गैराज की तरफ के किवाड़ों को छोड़कर खिड़की वगैरह नहीं थी। एक तरफ एक खाट थी, आले में एक लोटा। फर्श कच्चा, मगर लीपा हुआ। गैराज के बाहर लोहे की चादर का मजबूत फाटक था, जिसमें ताला पड़ा था। फाटक के अन्दर ही कच्चे फर्श में एक गढ़ा सा खुदा हुआ था। जिसके एक ओर चूना मिली मिट्टी का ढेर और मिट्टी का लोटा देखकर गढ़े का उपयोग समझते देर न लगी।

देविन्दरलाल का ट्रंक और बिस्तर जब कोठरी के कोने में रख दिया गया और बाहर आँगन का फाटक बन्द करके उसमें भी ताला लगा दिया गया तब थोड़ी देर वे हतबुद्धि खड़े रहे। यह है आजादी! पहले विदेशी सरकार लोगों को कैद करती थी कि वे आजादी के लिए लड़ना चाहते थे, अब अपने ही भाई अपनों को तनहाई कैद दे रहे हैं। क्योंकि वे आजादी के लिए ही लड़ाई रोकना चाहते हैं। फिर मानव प्राणी का स्वाभाविक वास्तुवाद जागा, और उन्होंने गैराज, कोठरी, आँगन का निरीक्षण इस दृष्टि से आरम्भ किया कि क्या–क्या सुविधाएँ वह अपने लिए कर सकते हैं?

गैराज ठीक है, थोड़ी दुर्गन्ध होगी, ज्यादा नहीं, बीच का किवाड़ बन्द रखने से कोठरी में नहीं आएगी। नहाने का कोई सवाल ही नहीं,–पानी शायद मुँह–हाथ धोने को काफी हो जाया करेगा.....

कोठरी–ठीक है। रोशनी नहीं है, पढ़ने–लिखने का सवाल नहीं उठता। पर काम चलाऊ रोशनी प्रतिबिम्बित होकर आ जाती है। क्योंकि आँगन की एक ओर सामने के मकान की कोने वाली बत्ती से रोशनी पड़ती है। बल्कि आँगन में इस जगह खड़े होकर शायद कुछ पढ़ा भी जा सके। लेकिन पढ़ने को है ही नहीं, यह तो ध्यान ही न रहा था।

देविन्दरलाल फिर ठिठक गए। सरकारी कैद में तो गा–चिल्ला भी सकते हैं, यहाँ तो चुप रहना होगा।

उन्हें याद आया, उन्होंने पढ़ा है, जेल में लोग चिड़िया, कबूतर, गिलहरी, बिल्ली आदि से दोस्ती करके अकेलापन दूर करते हैं..... वह भी न हो तो कोठरी में मकड़ी चींटी आदि का अध्ययन करके.....उन्होंने एक बार चारों ओर नजर दौड़ाई। मच्छरों से भी बन्धु भाव हो सकता है, वह उनका मन किसी तरह नहीं स्वीकार कर पाया।

वे आँगन में खड़े होकर आकाश देखने लगे। आजाद देश का आकाश और नीचे से अभ्यर्थना में–जलते हुए घरों का धुआँ! धूपेन घापयामः। लाल चन्दन–रक्त चन्दन....

अचानक उन्होंने आँगन की दीवार पर एक छाया देखी–एक बिलार। उन्होंने बुलाया ‘‘आओ, आओ’ पर वह वहीं बैठा स्थिर दृष्टि से ताकता रहा।

जहाँ बिलार आता है, वहाँ अकेलापन नहीं है। देविन्दरलाल ने कोठरी में जाकर बिस्तर बिछाया और थोड़ी देर में निर्द्वन्द्व भाव से सो गए।

दिन छिपे के वक्त केवल एक बार खाना आता था। यों वह दो वक्त के लिए काफी होता था। उसी समय कोठरी और गैराज के लोटे भर दिए जाते थे। लाता था एक जवान लड़का, जो स्पष्ट ही नौकर नहीं था, देविन्दरलाल ने अनुभव किया कि शेख साहब का लड़का होगा। वह बोलता बिलकुल नहीं था। देविन्दरलाल ने पहले दिन पूछा था कि शहर का क्या हाल है? तो उसने एक अजनबी दृष्टि से उन्हें देख लिया था। फिर पूछा कि अभी अमन हुआ या नहीं? तो उसने नकारात्मक सिर हिला दिया था और सब खैरियत ? तो फिर सिर हिलाया था–हाँ।

देविन्दरलाल चाहते तो खाना दूसरे वक्त के लिए रख सकते थे, पर एक बार आता है तो वह एक बार ही खा लेना चाहिए यह सोचकर वे डटकर खा लेते थे और बाकी बिलार को दे देते थे। बिलार खूब हिल गया था, आकर गोद में बैठ जाता और खाता रहता, फिर हड्डी–वड्डी लेकर आँगन के कोने में बैठकर चबाता रहता या ऊब जाता तो देविन्दरलाल के पास घुरघुराने लगता।

इस तरह शाम कट जाती थी। रात घनी हो आती थी, तब वे सो जाते थे। सुबह उठकर आँगन में कुछ वरजिश कर लेते थे कि शरीर ठीक रहे, बाकी दिन कोठरी में बैठे कभी कंकड़ों से खेलते, कभी आँगन की दीवार पर बैठने वाली गौरेया देखते, कभी दूर से कबूतर का गुटरगूँ सुनते–कभी सामने के कोने से शेखजी के घर के लोगों की बातचीत भी सुन पड़ती। अलग–अलग आवाजें वे पहचानने लगे थे, और तीन–चार दिन में ही वे घर के भीतर के जीवन और व्यक्तियों से परिचित हो गए थे। एक भारी सी जनानी आवाज थी–शेख साहब की बीबी की, एक और तीखी जनानी आवाज थी जिसके स्वर में वय का खुरदरापन था–घर की कोई और बुजुर्ग स्त्री, एक विनीत युवा स्वर था जो प्रायः पहली आवाज की जैबू! नी जैबू! पुकार के उत्तर में बोलता था और इसलिए शेख साहब की लड़की जेबुन्निसा का स्वर था। दो मर्दानी आवाजें भी सुन पड़ती थीं–एक तो आबिद मियाँ की, जो शेख साहब का लड़का हुआ और जो खाना लेकर आता है। और एक बड़ी भारी और चरबी से चिकनी आवाज जो शेख साहब की आवाज है। इस आवाज को देविन्दरलाल सुन तो सकते, लेकिन इसकी बात के शब्दाकार कभी पहचान में न आते–दूर से तीखी आवाजों के बोल ही स्पष्ट समझ आते हैं।

जैबू की आवाज से देविन्दरलाल का लगाव था। घर की युवती लड़की की आवाज थी, इस स्वाभाविक आकर्षण से नहीं, वह विनीत थी, इसलिए मन–ही–मन वे जैबुन्निसा के बारे में अपने ऊहापोह की रोमानी खिलवाड़ कहकर अपने को थोड़ा झिड़क भी लेते थे; पर अक्सर वे यह भी सोचते थे कि क्या यह आवाज भी लोगों में फिरकापरस्ती का जहर भरती होगी ? सकती होगी ? शेख साहब पुलिस के किसी दफ्तर में शायद हैडक्लर्क हैं। देविन्दरलाल को यहाँ लाते समय रफीकुद्दीन ने यही कहा था कि पुलिसियों का घर तो सुरक्षित होता है, यह बात ठीक है लेकिन सुरक्षित होता है इसलिए शायद बहुत से उपद्रव की जड़ भी होता है। ऐसे घर में भी सभी लोग जहर फैलाने वाले हों तो अचम्भा क्या....

लेकिन खाते वक्त भी वह सोचते, खाने में कौनसी चीज किस हाथ की बनी होगी....परोसा किसने होगा। सुनी बातों से वह जानते थे कि पकाने में बड़ा हिस्सा तो उस तीखी खुरदरी आवाज वाली स्त्री का रहता था, पर परोसना शायद जैबुन्निसा के जिम्मे ही था और यही सब सोचते–सोचते देविन्दरलाल खाना खाते और कुछ ज्यादा ही खा लेते। खाने में बड़ी–बड़ी मुसलमानी रोटी के बजाय छोटे–छोटे हिन्दू फुलके देखकर देविन्दरलाल के जीवन की एकरसता में थोड़ा सा परिवर्तन आया। माँस तो था लेकिन आज रबड़ी भी थी जबकि पीछे मीठे के नाम पर एक आध बार शाह टुकड़ा और एक बार फिरनी आई थी। आबिद जब खाना रखकर चला गया तब देविन्दरलाल क्षणभर उसे देखते रहे। उनकी उँगलियां फुलकों से खेलने लगीं– उन्होनें एकाध को उठाकर फिर रख दिया; पल भर के लिए अपने घर का दृश्य उनकी आँखों के आगे दौड़ गया। उन्होंने फिर दो–एक फुलके उठाए और फिर रख दिये।

हठात वे चौंके।

तीन–एक फुलकों की तह के बीच में कागज की एक पुड़िया सी पड़ी थी।

देविन्दरलाल ने पुड़िया खोली।

पुड़िया में कुछ नहीं था।

देविन्दरलाल उसे फिर गोल करके फेंक देने वाले थे कि हाथ ठिठक गया। उन्होंने कोठरी से

आँगन में जाकर कोने में पंजों पर खड़े होकर बाहर की रोशनी में पुर्जा देखा, उस पर कुछ लिखा था। केवल एक सतर।

''खाना कुत्ते को खिलाकर खाइएगा।''

देविन्दरलाल ने कागज की चिन्दियाँ की। चिन्दियों को मसला कोठरी से गैराज में जाकर गड्ढे में डाल दिया और आँगन में लौट आए और टहलने लगे। मस्तिष्क ने कुछ नहीं कहा। सन्न रहा। केवल एक नाम उसके भीतर खोया सा चक्कर काटता रहा, जैबू...जैबू...जैबू...

थोड़ी देर बाद वह फिर खाने के पास जाकर खड़े हो गए।

यह उनका खाना है–देविन्दरलाल का। मित्र के नहीं, तो मित्र के मित्र के यहाँ से आया– और उनके मेजबान के, उनके आश्रयदाता के।

जैबू के।

जैबू के पिता के।

कुत्ता यहाँ कहाँ है?

देविन्दरलाल फिर टहलने लगे।

आँगन की दीवार पर छाया सरकी। बिलार बैठा था।

देविन्दरलाल ने बुलाया। लपककर कन्धे पर आ गया। देविन्दरलाल ने उसे गोद में लिया और पीठ सहलाने लगे। वह घुरघुराने लगा। देविन्दरलाल कोठरी में गए। थोड़ी देर बिलार को पुचकारते रहे, फिर धीरे–धीरे बोले, ''देखो बेटा, तुम मेरे मेहमान, मैं शेख साहब का, है न? वह मेरे साथ जो करना चाहते हैं, वही मैं तुम्हारे साथ करना चाहता हूँ। चाहता नहीं हूँ, पर करने जा रहा हूँ। वह भी चाहते हैं कि नहीं, पता नहीं, यह तो जानना है। इसलिए तो मैं तुम्हारे साथ वह करना चाहता हूँ जो मेरे साथ वह पता नहीं चाहते हैं कि नहीं .... नहीं सब बात गड़बड हो गई। अच्छा रोज मेरी जूठन तुम खाते हो, आज तुम्हारी मैं खाऊँगा। हाँ, यही ठीक है। लो खाओ–''

बिलार ने मांस खाया। हड्डी झपटना चाहता था, पर देविन्दरलाल ने उसे गोद में लिये ही रबड़ी खिलाई–वह सब चाट गया। देविन्दरलाल उसे गोद में लिए सहलाते रहे।

जानवरों में तो सहज ज्ञान होता है। खाद्य–अखाद्य का, नहीं तो वे बचते कैसे? सब जानवरों में होता है, और बिल्ली तो जानवरों में शायद सबसे सहज ज्ञान के सहारे जीने वाली है, तभी तो कुत्ते की तरह पलती नहीं, बिल्ली जो खा ले वह सर्वथा खाद्य है– जो बिल्ली सड़ी मछली खा ले जिसे इन्सान न खाए वह और बात है....

सहसा बिलार जोर से गुस्से से चीखा और उछलकर गोद से बाहर जा कूदा, चीखता–गुर्राता सा कूदकर दीवार पर चढ़ा और गैराज की छत पर जा पहुँचा। वहाँ से थोड़ी देर तक उनके कानों में अपने–आपसे ही लड़ने की आवाज आती रही। फिर धीरे–धीरे गुस्से का स्वर दर्द के स्वर में परिणत हुआ, फिर एक करुण रिरियाहट में, एक दुर्बल चीख में, एक बुझती हुई सी कराह में, फिर सहसा चुप हो जाने वाली लम्बी सांस में–

देविन्दरलाल फिर खाने को देखने लगे। वह कुछ साफ–साफ दीखता हो सो नहीं; पर देविन्दरलाल जी की आँखें निस्पन्द उसे देखती रहीं।

आजादी! भाईचारा! देश राष्ट्र....!

एक ने कहा कि हम जोर करके रखेंगे और रक्षा करेंगे, पर घर से निकाल दिया दूसरे ने आश्रय दिया और विष दिया।

और साथ में चेतावनी कि विष दिया जा रहा है।

देविन्दरलाल का मन ग्लानि से उमड़ गया। इस धक्के को राजनीति की भुरभुरी रेत की दीवार के सहारे नहीं, दर्शन के सहारे ही झेला जा सकता था।

देविन्दरलाल ने जाना कि दुनिया में खतरा बुरे की ताकत के कारण नहीं, अच्छे की दुर्बलता के कारण है। भलाई की साहसहीनता ही बड़ी बुराई है। घने बादल से रात नहीं होती, सूरज के निस्तेज हो जाने से होती है।

उन्होंने खाना उठाकर बाहर आँगन में रख दिया। दो घूंट पानी पिया, फिर टहलने लगे।

तनिक देर बाद उन्होंने आकर ट्रंक खोला। एक बार सरसरी दृष्टि से सब चीजों को देखा, फिर ऊपर के खाने में से दो–एक कागज, दो–एक फोटो, एक सेविंग बैंक की पासबुक और एक बड़ा सा लिफाफा निकाल कर एक काले शेरवानीनुमा कोट की जेब में रखकर कोट पहन लिया। आँगन में आकर एक क्षण भर कान लगाकर सुना।

फिर वे आँगन की दीवार फांद गए और बाहर सड़क पर निकल गए। वे स्वयं न जान सके कि कैसे।

इसके बाद की घटना, घटना नहीं है, घटनाएँ सब अधूरी होती हैं, पूरी तो कहानी होती है। कहानी की संगति मानवीय तर्क या विवेक या कला या सौन्दर्य बोध की बनी हुई संगति है इसलिए मानव को दीख जाती है और वह पूर्णता का आनन्द पा लेता है। घटना की संगति मानव पर किसी शक्ति की–कह लीजिए काल या प्रकृति या संयोग या दैव या भगवान की–बनाई हुई संगति है। इसलिए मानव को सहसा नहीं भी दीखती इसलिए इसके बाद जो कुछ हुआ और जैसे हुआ वह बताना जरूरी नहीं। इतना बताने से काम चल जायेगा कि डेढ़ महीने बाद अपने घर का पता लेने के लिए देविन्दरलाल अपना पता देकर दिल्ली रेडियो से अपील करवा रहे थे, तब एक दिन उन्हें लाहौर की मुहरवाली एक छोटी सी चिट्ठी मिली थी।

"आप बचकर चले गए, इसके लिए खुदा का लाख–लाख शुक्र है। मैं मानती हूँ कि रेडियो पर जिनके नाम अपील की है, वे सब सलामती से आपके पास पहुँच जाएँ। अब्बा ने जो किया या करना चाहा उसके लिए मैं माफी माँगती हूँ और यह भी याद दिलाती हूँ कि उसकी काट मैंने ही कर दी थी। अहसान नहीं जताती–मेरा कोई अहसान आप पर नहीं है–सिर्फ यह इल्तजा करती हूँ कि आपके मुल्क में कोई अल्पसंख्यक मज़लूम हो तो याद कर लीजियेगा। इसलिए नहीं वह मुसलमान है, इसलिए कि आप इन्सान हैं, खुदा हाफिज!"

देविन्दरलाल की स्मृति में शेख अताउल्ला की चरबी से चिकनी भारी आवाज गूँज गई, 'जैब! जैब!' और फिर गैराज की छत पर छटपटाकर धीरे–धीरे शांत होने वाले बिलार की वह दर्द भरी कराह, जो केवल एक लम्बी साँस बनकर चुप हो गई थी।

उन्होंने चिट्ठी की छोटी सी गोली बनाकर चुटकी से उड़ा दी।

शब्दार्थ–

शरणदाता– शरण देने वाला,	आग्रह– निवेदन,	व्यथा –पीड़ा,
फिज़ा – वातावरण,	फर्ज़ – कर्त्तव्य,	पनाह – शरण,
हिफाज़त – सुरक्षा,	मेजारिटी – बहुसंख्यक,	मुल्क – देश,

माइनोरिटी—अल्पसंख्यक,	अहाता—बाड़ा, घिरी हुई भूमि,	हुल्लड़—शोरगुल, हल्ला
बला—आपदा,	वीरान—सुनसान,	विषाक्त—जहर युक्त, जहरीला
रूखाई—रूखापन,	कृपाण—तलवार,	दाद देना—प्रशंसा करना,
स्मृति—याद,	जलील—दुःखी, अपमानित	नामुमकिन—असंभव,
निर्द्वन्द्व भाव—निश्चिन्तता,	वय का—उम्र का,	टहलना—घूमना,
परिणत—बदला हुआ,	दुर्बल—कमजोर,	निस्तेज—तेज रहित,
तर्क—तथ्य,	सलामत—सुरक्षित,	इल्तिज़ा—निवेदन (आग्रह),
मज़लूम—पीड़ित,	आसन्न—जो निकट हो,	निर्निमेष—अलपक।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. देविन्दरलाल और रफीकुद्दीन घर में बैठकर किसकी आलोचना किया करते थे—
   (क) मुसलमानों की (ख) हिन्दुओं की
   (ग) देश के भविष्य की (घ) देश के वर्तमान की
2. मरीज को देखते समय डॉक्टर की पीठ में छुरा भौंक दिया था—
   (क) दंगाइयों ने (ख) मोहल्ले के आदमी ने
   (ग) मरीज के भाई ने (घ) मरीज के रिश्तेदार ने
3. गैराज में रहने के दौरान देविन्दरलाल बाकी बचा खाना देते थे—
   (क) कुत्ते को (ख) बिलार को
   (ग) गाय को (घ) किसी को नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न—

1. ''नहीं साहब, हमारी नाक कट जायेगी।'' ये शब्द किससे, किसने और कब कहे थे ?
2. ''उन्हें शिकार चाहिए—हल्ला करके न मिलेगा तो आग लगाकर लेंगे।'' यहाँ शिकार कौन है और शिकारी कौन ?
3. देविन्दर लाल को मिली हुई लाहौर की मुहर वाली चिट्ठी किसकी थी ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न—

1. रोटियों के बीच रखे कागज के पुर्जे पर क्या लिखा था? वह किसने लिखा और क्यों ?
2. रफीकुद्दीन अपनी आँखों में पराजय लिये चुपचाप क्या देखते रहे थे ?
3. ''............................ धीरे—धीरे गुस्से का स्वर दर्द के स्वर में परिणत हुआ, फिर एक करुण रिरियाहट में, एक दुर्बल चीख में , एक बुझती हुई सी कराह..................'' यह बुझती कराह किसकी थी ? यह किस समय का वर्णन है ?

निबंधात्मक प्रश्न–

1. 'शरणदाता' कहानी की मूल संवेदना और उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।
2. ''देश के बँटवारे के समय लाहौर में हैवानियत और इंसानियत दोनों के दृश्य एक ही छत के नीचे दृष्टिगत होते है।'' इस कथन के संबंध में अपने विचार लिखिए।
3. यदि आप शेख अताउल्लाह के स्थान पर होते तो देविन्दरलाल के साथ कैसा व्यवहार करते ? अपनी कल्पना के आधार पर बताइये।

*****

देशभक्त

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

लेखक–परिचय

'उग्र' जी का जन्म सन् 1900 ई. में चुनार, जिला मीरजापुर में एक गरीब ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा काशी में हुई स्वतंत्रता आन्दोलन के समय आपके उग्र विचारों के कारण इन्हें विद्यालय से निकाल दिया गया। बड़े भाई के साथ बहुत दिनों तक अयोध्या के महन्तों के साथ रामलीला मण्डली में 'सीता' का अभिनय करते रहे। चाचा की कृपा से पुनः पढ़ाई शुरू हुई किन्तु 1921 में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेकर जेल चले गये। 1921 से ही 'अष्टावक्र' नाम से कहानियाँ लिखीं। गोरखपुर से स्वदेश पत्रिका निकाली। इसके पहले अंक पर ही अंग्रेज सरकार ने इनके नाम वारन्ट निकाल दिया तो कलकत्ता जाकर 'मतवाला' पत्र का संपादन करने लगे। वहाँ से बम्बई आकर 'साइलेन्ट फिल्म' में लेखक का काम करने लगे किन्तु वहाँ से 'स्वदेश–पत्रिका' के जुर्म में बम्बई से पकड़ कर गोरखपुर लाए गए और छः महीने की सख्त सजा हुई। इनकी 'बुढ़ापा' और 'रुपया' कहानियों के कारण सरकार ने इन्हें पुनः कैद कर लिया। वीणा, स्वराज, विक्रम, संग्राम आदि पत्रों का संपादन इन्होंने क्रमशः किया। इनकी जीवनी 'अपनी खबर' के नाम से प्रकाशित हुई है, जो हिन्दी की अनूठी रचना है। इनके द्वारा लिखे गये 'महात्मा ईसा' नामक नाटक और 'चाकलेट' उपन्यास बहुत चर्चित हुए। उग्र जी की शैली में पौरुष की खनक और स्पष्टवादिता दिखाई देती है उग्र जी का देशभक्ति का संस्कार अत्यंत प्रखर था।

पाठ–परिचय

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने देवलोक के रूपक के माध्यम से देश के लिए सर्वस्व लुटा देने वाले नवयुवक की सृष्टि को विधाता की सर्वाधिक प्रिय सृष्टि बताया है। इसी के माध्यम से देश–सेवा के पथ पर आने वाली कठिनाइयों–दरिद्रता, दुःख चिन्ता आदि को देश–सेवा का ही अभिन्न अंग माना गया है। देश–हित में सभी प्रकार के कष्टों को सहते हुए भी निरंतर सक्रिय रहना और अडिग भाव से देश–सेवा करना ही देश–भक्त का शील–चरित्र है यह चरित्र देव–लोक के लिए भी दुर्लभ एवं स्पृहणीय है। प्रस्तुत कहानी देश–भक्त की जय से गुंजरित अद्भुत कहानी है।

**** ****

:: 1 ::

'स्वामिन् आज कोई सुन्दर सृष्टि करो ! किसी ऐसे प्राणी का निर्माण करो जिसकी रचना पर हमें गौरव हो सके। क्यों?

'सचमुच प्रिये, आज तुम्हें क्या सूझा, जो सारा धन्धा छोड़ कर यहाँ आई हो, और मेरी सृष्टि–परीक्षा लेने को तैयार हो?''

''तुम्हारी परीक्षा, और मैं लूँगी? हरे, हरे। मुझे व्यर्थ ही काँटों में क्यों घसीट रहे हो नाथ? यों ही बैठी–बैठी तुम्हारी अद्‌भुत रचना 'मृत्युलोक' का तमाशा देख रही थी। जब जी ऊब गया, तब तुम्हारे पास चली आई हूँ। अब संसार में मौलिकता नहीं दिखाई पड़ती। वही पुरानी गाथा चारों और दिखाई–सुनाई पड़ रही है। कोई रोता है, कोई खिलखिलाता है, एक प्यार करता है दूसरा अत्याचार करता है, राजा धीरे–धीरे भीख माँगने लगता है और भिक्षुक शासन करने लगता है। इन बातों में मौलिकता कहाँ ? इसलिए प्रार्थना करती हूँ कि कोई मनोरंजक सृष्टि सँवारो। संसार के अधिकतर प्राणी तुमको शाप ही देते हैं, एक बार आशीर्वाद भी लो।'

'अच्छी बात है, इस समय चित्त भी प्रसन्न है। किसी से मानव सृष्टि की आवश्यक सामग्री यहीं मँगवाओ। आज मैं तुम्हारे सामने ही तुम्हारी सहायता से सृष्टि करूँगा।

''मैं, तुमको सहायता दूँगी! तब रहने दो, हो चुकी सृष्टि! सृष्टि करने की योग्यता यदि मुझमें होती, तो मैं तुमको कष्ट देने के लिए यहाँ आती ?''

''नाराज क्यों, होती हो भाई! तुमसे पुतला तैयार करने को कौन कहता है ? तुम यहाँ चुपचाप बैठी रहो। हाँ, कभी–कभी मेरी ओर, मेरी कृति की ओर अपने मधुर कटाक्ष को फेर दिया करना। तुम्हारी इतनी–सी सहायता से मेरी सृष्टि में जान आ जाएगी, समझी ?''

''समझी। देखती हूँ, तुम्हारी आदत भी कलियुगी बूढ़ों–सी हुई जा रही है। अभी तक आँखों में जवानी का नशा छाया हुआ है।''

''और तुम्हारी आदत तो बहुत अच्छी हुई जा रही है। वे हँसे और बोले–चलो, जल्दी करो, सब चीजें मँगवाओ।''

:: 2 ::

क्षिति, जल, अग्नि, आकाश और पवन के सम्मिश्रण से विधाता ने एक पुतला तैयार किया। इसके बाद उन्होंने सबसे पहले तेज को बुला कर उस पुतले में प्रवेश करने को कहा। इस के बाद सौन्दर्य, दया, करुणा, प्रेम, विद्या, बुद्धि–बल, संतोष–साहस, उत्साह–धैर्य–गम्भीरता आदि समस्त गुणों से उस पुतले को सजा दिया। अन्त में आयु और भाग्य की रेखाएँ बनाने के लिए ज्यों ही विधाता ने लेखनी उठायी त्यों ही ब्रह्माणी ने रोका– ''सुनिए भी, इसके भाग्य में क्या लिखने जा रहे हैं, और आयु कितनी दीजियेगा?''

''क्यों? तुमको इन बातों से क्या मतलब? तुम्हें तो तमाशा–भर देखता है, वह देख लेना। भौहें तनने लगीं न। अच्छा लो सुन लो। इसके भाग्य में लिखी जा रही है, भयंकर दरिद्रता, दुःख, चिन्ता और इसकी आयु होगी बीस वर्षों की!''

''अरे! यह क्या तमाशा कर रहे हैं? बल, साहस, दया, तेज, सौन्दर्य, विद्या, बुद्धि आदि गुणों को देने के बाद दरिद्रता, दुःख, चिन्ता आदि को देने की क्या आवश्यकता है? फिर सृष्टि को देख कर लोग आपकी प्रशंसा करेंगे या गालियाँ देंगे? फिर केवल बीस वर्षों की अवस्था! इन्हीं कारणों से मृत्यु–लोक

के कवि आपकी शिकायत करते हैं। क्या फिर किसी से ''नाम चतुरानन पै चूकते चले गये! लिखवाने का विचार है?''

विधाता ने मुस्कराकर कहा—''अब तो रचना हो गयी। चुपचाप तमाशा भर देखो। इसकी आयु इसलिए कम रखी है जिससे तमाशा जल्द दिखाई पड़े।''

ब्रह्माणी ने पूछा—''इसे मृत्यु—लोक वाले किस नाम से पुकारेंगे?''

प्रजापति ने गर्व—भरे स्वर से उत्तर दिया — 'देशभक्त।'

:: 3 ::

अमरावती से इन्द्र ने, कैलास से शिव ने, बैकुण्ठ से कमलापति ने संसार—रंगमंच पर देशभक्त का प्रवेश उस समय देखा, जब उसकी अवस्था उन्नीस वर्ष की हो गई। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। देव—मण्डली का एक—एक दिन हमारी अनेक शताब्दियों से भी बड़ा होता है। हमारे उन्नीस वर्ष तो उनके कुछ मिनटों से भी कम थे।

देशभक्त के दर्शनों से भगवान प्रसन्न होकर नाचने लगे। उन्होंने अपनी प्राणेश्वरी पार्वती का ध्यान देशभक्त की ओर आकर्षित करते हुए कहा — ''देखो, यह सृष्टि की अभूतपूर्व रचना है। कोई भी देवता देशभक्त के रूप में नरलोक में जाकर अपने को धन्य समझ सकता है, प्रिये इसे आशीर्वाद दो।'' प्रसन्नवदना उमा ने कहा— ''देशभक्त की जय हो!''

एक दिन देशभक्त के तेजपूर्ण मुखमंडल पर अचानक कमला की दृष्टि गई। उस समय यह (देशभक्त) हाथ में पिस्तौल लिये किसी देश—द्रोही का पीछा कर रहा था। इन्दिरा ने घबराकर विष्णु को उसकी और आकर्षित करते हुए कहा — ''यह कौन है? मुख पर इतना तेज ऐसी पवित्रता और करने जा रहा है, राक्षसी कर्म—हत्या! यह कैसी लीला है?'' लीलाधर विष्णु ने कहा ''चुपचाप देखो। 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दृष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे—युगे' यदि वह देशभक्त—राक्षसों का काम करने जा रहा है। देवी, इन्हें प्रणाम करो! यह कर्ता की पवित्र कृति है।''

हाथ की पिस्तौल देश—द्रोही के मस्तक के सामने कर, देशभक्त ने कहा — 'मूर्ख पश्चाताप कर, देश—द्रोह से हाथ खींच कर मातृ—सेवा की प्रतिज्ञा कर! नहीं तो मरने के लिए तैयार हो जा।'

देश—द्रोही के मुख पर घृणा और अभिमान भरी मुस्कराहट दौड़ गयी। उसने शासन के स्वर में उत्तर दिया —

'अज्ञानी, सावधान! हम शासकों के लाड़ले हैं। हमारे माँ—बाप और ईश्वर, सर्वशक्तिमान 'सम्राट' हैं। 'सम्राट' के सम्मुख देश की बड़ाई।'

'अन्तिम बार पुनः कह रहा हूँ, 'माता की जय' बोल, अन्यथा इधर देख!' देशभक्त, की पिस्तौल गरजने के लिए तैयार हो गयी।

सिर पर संकट देखकर देश—द्रोही ने अपनी जेब से सीटी निकाल कर जोर से बजाई। जान पड़ता है देश—द्रोहियों का दल देशभक्त की ओर लपका। फिर क्या था, देशभक्त की पिस्तौल गरज उठी। क्षण—भर में देश—द्रोहियों का सरदार, कबूतर की तरह पृथ्वी पर लौटने लगा। गिरफ्तार होने से पूर्व सफल—प्रयत्न, देशभक्त आनन्द विभोर होकर चिल्ला उठा, 'माता की जय हो।'

काँपते हुए इन्द्रासन ने, पुष्पवृष्टि करते हुए नन्दन—कानन ने, तांडव—नृत्य में लीन रूद्र ने, कल—कल करती हुई सुरसरिता ने एक स्वर से कहा — 'देशभक्त की जय हो।'

विधाता प्रेम—गद्गद् होकर ब्रह्माणी से बोले— 'देखती हो, देशभक्त के चरण स्पर्श से अभागा

कारागार अपने को स्वर्ग समझ रहा है। लोहे की कड़ियों –हथकड़ी–बेड़ियों ने मानो पारस पा लिया है, संसार के हृदय में प्रसन्नता का समुद्र उमड़ रहा है, वसुन्धरा फूली नहीं समाती! यह है मेरी कृति, यह मेरी कृति, यह है मेरी विभूति! प्रिय गाओ, मंगल मनाओ, आज मेरी लेखनी धन्य हुई।'

:: 4 ::

जिस दिन देशभक्त की जवानी का अन्तिम पृष्ठ लिखा जाने वाला था उस दिन स्वर्गलोक में आनन्द का अपार पारावर उमड़ रहा था। त्रिंश कोटि देवांगनाओं की थालियों को उदार कल्पवृक्ष ने अपने पुष्पों से भर दिया था, अमरावती ने अपना अपूर्व शृंगार किया था, चारों ओर मंगल–गान गाए जा रहे थे।

समय से बहुत पहले देवतागण विमान पर आरूढ़ हो कर आकाश में विचरने और देशभक्त के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

सम्राट के समर्थक भीषण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर एक बड़े मैदान में खड़े थे। देशभक्त पर 'सम्राट के प्रति विद्रोह' का अपराध लगा कर न्याय का नाटक खेला जा चुका था। न्यायाधीश की यह आज्ञा सुनाई जा चुकी थी कि 'या तो देशभक्त अपने कर्मों के लिए पश्चाताप प्रकट कर सम्राट की जय घोषणा करें या तोप से उसे उड़ा दिया जाए।' देशभक्त पश्चाताप क्या करता? अतः सम्राट के सैनिकों ने जंजीर में कसकर तोप के सम्मुख खड़ा कर दिया।

सम्राट के प्रतिनिधि ने कहा –

'अपराधी! न्याय की रक्षा के लिए अंतिम बार फिर कहता हूँ – 'सम्राट की जय' घोषणा का पश्चाताप कर ले।''

मुस्कराते हुए देशभक्त बन्दी ने कहा–

''तुम अपना काम करो, मुझसे पश्चाताप की आशा व्यर्थ है। तुम मुझसे 'सम्राट की जय' कहलाने के लिए क्यों मरे जा रहे हो? सच्चा सम्राट कहाँ है? तुम्हारे कहने से संसार के लुटेरों को मैं कैसे सम्राट मान लूँ? सम्राट मनुष्यता का द्रोही हो सकता है? सम्राट न्याय का गला घोंट सकता है? सम्राट रक्त का प्यासा हो सकता है? भाई तुम जिसे सम्राट कहते हो, उसे मनुष्यता के उपासक 'राक्षस' कहते हैं। फिर सम्राट की जय – घोषणा कैसी ? तुम मुझे तोप से उड़ा दो– इसी में सम्राट का मंगल है, इसी से पापों का घड़ा फूटेगा और उसे मुक्ति मिलेगी।''

देव–मण्डल के बीच बैठी हुई माता मनुष्यता की गोद में बैठकर देशभक्त ने और साथ ही त्रिंश कोटि देवताओं ने देखा, पंचतत्त्व के एक पुतले को अत्याचार के उपासकों ने तोप से उड़ा दिया।

उस पुतले के एक – एक कण को देवताओं ने मणि की तरह लूट लिया। बहुत देर तक देवलोक 'देशभक्त की जय' से मुखरित रहा।

शब्दार्थ–

क्षिति– पृथ्वी,	सृष्टि– संसार, जगत,	विधाता– ईश्वर,
परित्राणाय–पूर्ण रक्षा के लिए	दुष्कृत्य– बुरा कार्य,	त्रिंश– तीस,
कोटि–करोड़,	पंचतत्त्व– पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि	
दृष्टि–नजर,	लीन–रत,	आरूढ़– चढ़ा हुआ,

विचरण– घूमना, विद्रोह– हानि पहँचाने के विचार से किया गया कार्य

द्रोही– दुश्मन, उपासक– भक्त

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. ''देवी इन्हें प्रणाम करो। यह कर्ता की पवित्र कृति है।'' लीलाधर विष्णु ने देशभक्त के किस कर्त्तव्य की ओर इन्दिरा का ध्यान आकृष्ट किया–

   (क) नृशंसता (ख) देश द्रोह

   (ग) लोक–रक्षा (घ) शौर्य ( )

2. 'देशभक्त पर 'सम्राट के प्रति विद्रोह' का अपराध लगाकर न्याय का नाटक खेला जा चुका था।' न्यायाधीश ने देशभक्त को क्या आज्ञा सुनाई–

   (क) वह देशद्रोह के अपराध में पश्चात्ताप करे।

   (ख) वह 'सम्राट की जय' बोले।

   (ग) वह सम्राट की जय बोलकर पश्चात्ताप करे।

   (घ) वह मृत्यु या सम्राट – भक्ति दोनों में से एक मार्ग चुने। ( )

3. पंचतत्व का पुतला किसे कहा गया है–

   (क) पर्वत (ख) सागर

   (ग) मानव (घ) पक्षी ( )

4. देशभक्त के स्पर्श से कौन सा अभागा स्थल पवित्र हो जाता है–

   (क) महल (ख) कारागार

   (ग) चरागाह (घ) झोंपड़ा ( )

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. 'क्या फिर किसी से नाम चतुरानन पै चूकते चले गये। लिखवाने का विचार है ?' ब्रह्माणी ने विधाता की किस बात पर यह व्यंग्योक्ति की ?
2. विधाता प्रेम–गद्‌गद्‌ होकर ब्रह्माणी से बोले – ''देखती हो, देशभक्त के चरण–स्पर्श से अभागा कारागार अपने को स्वर्ग समझ रहा है।'' यहाँ कारागार को उग्र जी ने अभागा क्यों कहा ?
3. जिस दिन देशभक्त के जीवन का अन्तिम पृष्ठ लिखा जाने वाला था – उस दिन स्वर्ग–लोक में आनन्द का अपार पारावार क्यों उमड़ रहा था ?
4. तुम अपना काम करो, मुझसे पश्चात्ताप कराने की आशा व्यर्थ है। कहते समय देशभक्त के मनः स्थित संकल्प को स्पष्ट कीजिए।
5. 'अच्छी बात है, इस समय चित्त भी प्रसन्न है। किसी से मानव–सृष्टि की आवश्यक सामग्री यहीं मँगवाओ।' विधाता के अनुसार वे आवश्यक सामग्रियाँ कौन सी हैं ?

निबंधात्मक प्रश्न–

1. ''समझी। देखती हूँ, तुम्हारी आदत भी कलियुगी बूढ़ों–सी हुई जा रही है।'' इस कथन से बूढ़ों के किन लक्षणों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है ?
2. इस कहानी में जिस राम–कृष्णादि महापुरुषों को उद्‌धृत किया गया है, उनके लोक–हितकारी कर्तव्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
3. 'पंचतत्व के एक पुतले को अत्याचार के उपासकों ने तोप से उड़ा दिया।' देवताओं पर इस बलिदान की क्या प्रतिक्रिया हुई और क्यों ?
4. 'अच्छा सुन लो! इसके भाग्य में लिखी जा रही है भयंकर दरिद्रता, दुःख, चिन्ता और इसकी आयु होगी बीस वर्षों की।' देशभक्ति के इस कष्टसाध्य जीवन–दर्शन पर अपने विचार सौ शब्दों में प्रकट कीजिए।

*****

ताई

—विश्वम्भरनाथ शर्मा ''कौशिक''

लेखक—परिचय

उर्दू से हिन्दी में आने वाले लेखकों में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' अपने समय के उल्लेखनीय कहानीकार हैं। उनकी प्रथम कहानी 'रक्षाबन्धन' सन् 1913 में प्रकाशित हुई थी। वे प्रेमचन्द की परम्परा के कहानीकार हैं तथा समाज—सुधार को उन्होंने अपनी कहानियों का कथ्य बनाया। उनकी कहानियों की शैली अत्यन्त सरल, सरस और रोचक है। उनकी हास्य—व्यंग्यपूर्ण कहानियाँ 'चाँद' में 'दुबेजी की चिट्ठी' के रूप में प्रकाशित हुई थीं। उन्होंने लगभग 300 कहानियाँ लिखीं तथा 'रक्षाबन्धन', 'कल्पमंदिर', 'चित्रकला' उनके प्रमुख कहानी—संग्रह हैं।

कौशिक जी की कहानियों में घरेलू जीवन की समस्याओं और उनके समाधान का सफल प्रयास मिलता है। उनकी भाषा सरल, साफ और ओजस्वी है। उनकी कहानियों के पात्र हमारे जीवन के जीते—जागते लोग हैं। वे स्थितियों का मार्मिक चित्रण करने में बहुत सफल हुए हैं।

पाठ—परिचय

'ताई' कौशिक जी की एक प्रसिद्ध कहानी है तथा इस कहानी की गिनती हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में होती है। यह कहानी पारिवारिक सम्बन्धों की विसंगतियों को उजागर करती है। मानसिक संकीर्णता से उत्पन्न ईर्ष्या—द्वेष बच्चों के स्नेहमय सूत्रों से किस प्रकार दूर हो जाता है, इस तथ्य को बड़ी कुशलता से इस कहानी में चित्रित किया गया है। रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी निःसंतान है, किन्तु रामेश्वरी की निकटता उसके देवर के बच्चों से बढ़ती जाती है। ताई रामेश्वरी के मन की ईर्ष्या को बालक 'मनोहर' का निश्छल प्यार धो देता है और रामेश्वरी का चरित्र एक उदात्त महिला के रूप में पाठक के समक्ष उभरता है।

**** ****

''ताऊजी, हमें लेलगाड़ी (रेलगाड़ी) ला दोगे?''—कहता हुआ एक पाँच वर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाँहे फैलाकर कहा— ''हाँ बेटा, ला देंगे।''

उनके इतना कहते ही बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमकर बोले— ''क्या करेगा रेलगाड़ी का ?''

बालक बोला– ''उछमें बैठकर बड़ी दूर जायेंगे। हम भी जायेंगे, चुन्नी को भी ले जायेंगे। बाबूजी को नहीं ले जायेंगे। हमें लेलगाड़ी नहीं ला देते। ताऊजी, तुम ला दोगे तो तुम्हें ले जायेंगे।''

बाबू– ''और किसे ले जायेगा ?''

बालक दम–भर सोचकर बोला– ''बछ, औल किसी को नहीं ले जायेंगे।''

पास ही बाबू रामजीदास की अर्धांगिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा– 'और अपनी ताई को नहीं ले जायेगा ?'

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताईजी उस समय कुछ चिढ़ी हुई–सी बैठी थी। बालक को उनके मुख के यह भाव अच्छे नहीं लगे। अतएव वह बोला– ''ताई को नहीं ले जायेंगे।''

ताईजी सुपारी काटती हुई बोली–''अपने ताऊ को ही ले जा। मेरे ऊपर दया रख।''

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने पूछा–''ताई को क्यों नहीं ले जायेगा?''

बालक– ''ताई हमें प्याल नहीं कलती।''

बाबू– ''जो प्यार करे तो ले जायेगा?''

बालक को इसमें सन्देह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा– ''क्यों रे, बोलता नहीं ? ताई प्यार करे तो, रेल पर बिठाकर ले जायेगा ?''

बालक ने ताऊ को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया, परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्धांगिनी के पास ले जाकर उनसे बोले–''लो, इसे प्यार कर लो, यह तुम्हें भी ले जायेगा।'' परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की यह चुहुलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनककर बोली– ''तुम्हीं रेल पर बैठकर जाओ, मुझे नहीं जाना है।''

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले– ''प्यार नहीं करोगी तो रेल में नहीं बैठायेगा– क्यों रे मनोहर?''

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को धकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर में चोट नहीं लगी, मन में लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया, चूमकर–पुचकारकर चुप किया और उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी देने का वचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भावपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले– ''तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? बच्चे को ढकेल दिया, जो उसके चोट लग जाती तो?''

रामेश्वरी मुँह लटकाकर बोली–'' लग जाती तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे? आप ही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे और अब आप ही ऐसी बातें करते हैं।''

बाबू साहब कुढ़कर बोले– ''इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं?''

रामेश्वरी–'' और नहीं किसे कहते हैं ? तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुःख–सुख सूझता ही नहीं। न जाने कब किसका जी कैसा होता है, तुम्हें इन बातों की कुछ परवाह ही नहीं। अपनी चुहुल

से काम है।''

बाबू–''बच्चों की प्यारी–प्यारी बातें सुनकर तो चाहे जैसा जी हो, प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न जाने किस धातु का बना हुआ है।;

रामेश्वरी– ''तुम्हारा हो जाता होगा। और होने को होता भी है, मगर वैसा बच्चा भी तो हो। पराये धन से भी कहीं घर भरता है।''

बाबू साहब कुछ देर चुप रहकर बोले–''यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे?''

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं– ''बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो, पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग फूटे हैं नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी सन्तान के लिए जाने क्या–क्या करते हैं– पूजा–पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातों से क्या काम ? रात–दिन भाई–भतीजों में मगन रहते हो।''

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा– ''पूजा–पाठ सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, वह पूजा–पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा यह अटल विश्वास है।''

श्रीमतीजी कुछ रुआँसे स्वर में बोलीं– ''इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रखा है। ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायें तो काम कैसे चले ? सब विश्वास पर ही बैठे रहें, तो आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे।''

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं। अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गये।

(2)

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन–देन भी है। इनके एक छोटा भाई है। उसका नाम है, कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु 35 वर्ष के लगभग है और छोटे भाई कृष्णदास की 21 वर्ष के लगभग। रामजीदास निःसन्तान हैं। कृष्णदास के दो सन्तानें है। एक पुत्र, वही पुत्र जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं– और एक कन्या है। कन्या की आयु 2 वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं– ऐसा स्नेह कि उनके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तानहीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाई की सन्तान को वे अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तानहीनता का बड़ा दुःख है। वह रात–दिन सन्तान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शैया पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शैया पर रामेश्वरी हथेली पर सिर रखे, किसी चिन्ता में डूबी हुई थी। दोनों बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठकर अपनी माँ के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा–''आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह से ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है, कभी–कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिल्कुल ही अमानुषिक हो उठता है।''

रामेश्वरी बोली– ''तुम्हीं ने ऐसा बना रखा है। उस दिन उस पण्डित ने कहा था कि हम दोनों

के जन्म–पत्र में सन्तान का योग है और उपाय करने पर सन्तान हो भी सकती है; उसने उपाय भी बताये थे, पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात–दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना न होना तो भगवान के अधीन है।''

बाबू साहब हँसकर बोले– ''तुम्हारी जैसी सीधी स्त्री भी ..... क्या कहूँ, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया–भर के झूठे और धूर्त हैं। ये झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते हैं।''

रामेश्वरी तुनककर बोली– ''तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी–पुराण भी सब झूठे हैं। पण्डित कुछ अपनी तरफ से तो बनाकर कहते नहीं हैं, शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है तो वे भी झूठे हैं। अँग्रेजी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप–दादों के जमाने से चली आई हैं उन्हें भी झूठा बताते हैं।''

बाबू साहब–''तुम समझती तो हो नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष–शास्त्र झूठा है। सम्भव है वह सच्चा हो। परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो–एक छोटी–मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते हैं और लोगों को ठगते–फिरते हैं। ऐसी दशा में उन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?''

रामेश्वरी– ''हूँ, सब झूठे ही हैं। तुम्ही एक सच्चे हो। अच्छा एक बात पूछती हूँ, भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?''

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले– 'भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो? परन्तु किया क्या जाय ? जब नहीं है और न होने की आशा है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ ? इसके सिवा, जो बात अपनी सन्तान से होती है, वही भाई की सन्तान से हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द उनकी बाल–क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय ?

रामेश्वरी कुछ कुढ़कर बोली– '' तुम्हारी समझ को क्या कहूँ। इसी से तो रात–दिन जला करती हूँ। भला यह तो बताओ कि हमारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा ?''

बाबू साहब हँसकर बोले– ''अरे तुम भी कहाँ की पोच बातें लाईं। नाम सन्तान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा–बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके। इसी प्रकार कितने महात्मा हो गये हैं, उन सबका नाम क्या उनकी सन्तान ही की बदौलत चल रहा है? सच पूछो, तो सन्तान से जितनी नाम चलने की आशा रहती है उतनी नाम डूब जाने की सम्भावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है, जिसके नाम बढ़ने के सिवा घटने की आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरधारी लाल कितने नामी आदमी थे। उनके सन्तान कहाँ है ? पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला आ रहा है, और अभी न जाने कितने दिनों तक चलता जायेगा।''

रामेश्वरी– ''शास्त्र में लिखा है, जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं होती।''

बाबू– ''मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम ? यदि मुक्ति होना मान लिया जाय, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों की मुक्ति हो जाती है ? मुक्ति का भी क्या सहज उपाय है! ये जितने पुत्र वाले हैं, सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी ?''

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोली– ''अब तुमसे कौन अपवाद करे। तुम तो अपने सामने किसी को

मानते ही नहीं।''

(3)

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व–प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु भद्दी–से–भद्दी और काम न आने वाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपनी समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दु :ख का अनुभव नहीं करता, इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आने वाली हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य को दुःख होता है, इसलिए कि वह अपनी चीज है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बनाकर नहीं छोड़ता अथवा अपने हृदय में भी जब तक यह विचार दृढ़ नहीं कर लेता कि वह वस्तु मेरी है, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है, प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली–दामन का–सा है। ये कभी पृथक् नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अन्तर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं, परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा था, पर उसको सींचकर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लाने वाला कोई नहीं। इसलिए उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिंचता तो था, परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये मेरे बच्चे नहीं, दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उनके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी जब वे देखती थीं कि उनके पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके (रामेश्वरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थी। पास ही उनकी देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उनके खेलों को देख रही थी। इस समय रामेश्वरी को बच्चों का खेलना–कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हे–नन्हें मुख, उनकी प्यारी–प्यारी तोतली बातें, उनका चिल्लाना, भागना, लौट जाना इत्यादि क्रीड़ाएँ उनके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उसके पीछे–पीछे मनोहर भी दौड़ा हुआ आया, और वह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गई। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सतृष्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित उन्हें देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी उन बच्चों की माता है।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खेलते रहे। सहसा उसी समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठकर चली गई।

''मनोहर, ले रेलगाड़ी।'' कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़पकर निकल भागे। रामजीदास ने पहले उन दोनों को खूब प्यार किया फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद टूटी। पति को बच्चों में मगन होते देखकर उनकी भवें तन गईं। बच्चों के प्रति फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जाग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आये, और मुस्कराकर बोले– ''आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं। इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।''

रामेश्वरी को पति की यह बात बुरी लगी। उन्हें अपनी कमजोरी पर बड़ा दुःख हुआ। केवल दुःख ही नहीं अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमजोरी पति पर प्रकट हो गई, यह बात उनके लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले– ''इसलिए मैं कहता हूँ कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।''

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी, परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग्य की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई। उन्होंने कुढ़कर मन में कहा– ''इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जायें, पाप कटे। आठों प्रहर आँखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।''

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा– ''अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।''

रामेश्वरी जलकर बोलीं– ''मुझे क्या पड़ी, जो मैं प्रेम करूँगी? तुम्हीं को मुबारक हो। निगोड़े आप ही आ–आकर घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी–कभी हँसना–बोलना भी पड़ता है। अभी परसों जरा यूँ ही धकेल दिया, उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण हैं, न यों चैन, न वों चैन।''

बाबू साहब को पत्नी के ये वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा– ''न जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी–खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर कहने से बल्लियों उछलती है। न जाने, मेरी बातों में कौन–सा विष घुला है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है, तो न कहा करूँगा। इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े–सिगोड़े कहा तो अच्छा न होगा। तुमसे मुझे बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।''

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आँखों द्वारा निकालने लगीं।

जैसे–ही–जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था। वैसे–ही–वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति–पत्नी में कहा–सुनी हो जाती थी, और रामेश्वरी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण वह पति की नजरों में गिरती जा रही हैं, तब उनके हृदय में बड़ा तूफान उठा। उन्होंने सोचा– पराये बच्चों के पीछे यह मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं, मुझे हर समय बुरा–भला कहा करते हैं। इनके लिए बच्चे ही सब कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं। दुनिया मरती जाती है, पर इन दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गये? न होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे, उस दिन घी के चिराग जलाऊँगी। इन्होंने ही मेरा घर सत्यानाश कर रखा है।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थी। उनके हृदय में अनेक विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज की सन्तान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद उनके विचार स्वयं कष्टदायक प्रतीत

होने लगे। तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए उठकर टहलने लगी।

वह टहल रही थी कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उनकी भृकुटी चढ़ गई और वह छत की चारदीवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गईं।

सन्ध्या का समय था। आकाश में रंग–बिरंगी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कटकर उसकी छत पर गिरे, तो क्या आनन्द आये। देर तक पतंग गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़कर रामेश्वरी के पास आया और उसकी टाँगों से लिपटकर बोला–"ताई, हमें पतंग मँगा दो।" रामेश्वरी ने झिड़ककर कहा–"चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।"

मनोहर अप्रतिभ होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुण स्वर में कहा– "ताई पतंग मँगा दो; हम भी उडायेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर मन–ही–मन कहा, 'यदि यह मेरा पुत्र होता तो आज मुझसे बढ़कर भाग्यवान स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़ा–मरा कितना सुन्दर है, और कैसी प्यारी–प्यारी बातें करता है। यही जी चाहता है कि उठाकर छाती से लगा लूँ।

यह सोचकर वह उसके सिर पर हाथ फेरने वाली ही थीं कि मनोहर उन्हें मौन देखकर बोला– "तुम हमें पतंग नहीं मँगवा दोगी, तो ताऊजी से कहकर तुम्हें पिटवायेंगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध से लाल हो गया। वह उसे झिड़ककर बोलीं–"जा कह दे अपने ताऊ से। देखूँ, वह मेरा क्या कर लेंगे?"

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया और सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतंगों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा–"यह सब ताऊ का दुलार है कि बालिश्त–भर का लड़का मुझे धमकता है। ईश्वर करे, इस दुलार पर बिजली टूटे।"

उसी समय आकाश से एक पतंग कटकर उसी छत की ओर आई, और रामेश्वरी के ऊपर से होकर छज्जे की ओर गई। छत के चारों ओर चारदीवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थीं, केवल वहाँ एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ–जा सकते थे। रामेश्वरी इस द्वार से सटकर खड़ी थीं। मनोहर ने पतंग को छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दौड़कर छज्जे की ओर चला गया और उनसे (रामेश्वरी से) दो फीट की दूरी पर खड़ा होकर पतंग को देखने लगा। रामेश्वरी खड़ी देखती रहीं। पतंग छज्जे पर से होती हुई नीचे, घर के आँगन में जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुँडेर पर रखकर मनोहर ने नीचे आँगन में झाँका और पतंग को आँगन में गिरते देखकर प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा; परन्तु घूमते समय मुँडेर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते–जाते उसके दोनों हाथों में मुँडेर आ गई। वह उसे पकड़कर लटक गया और रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया– "ताई!" रामेश्वरी ने धड़कते हृदय से घटना को देखा। उनके मन में आया कि अच्छा है, मरने दो, सदा का पाप कट जायेगा। यही सोचकर वह एक क्षण के लिए रुकीं, उधर मनोहर के हाथ मुँडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय और करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया– "अरी ताई!" मनोहर की आँखें रामेश्वरी की आँखों से मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देखकर रामेश्वरी का कलेजा मुँह को आ गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहर को पकड़ने के लिए अपना

हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा भी नहीं था कि मनोहर के हाथ से मुँडेर छूट गई। वह नीचे जा गिरा। रामेश्वरी चीख मारकर छज्जे पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में पड़ी रही। कभी–कभी वह जोरों से चिल्ला उठतीं और कहतीं– ''देखो–देखो, वह गिरा जा रहा है– उसे बचाओ– दौड़ो– मेरे मनोहर को बचा लो।'' कभी वह कहतीं– ''बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ–हाँ, मैं चाहती तो बचा सकती थी– मैंने देर कर दी।'' मनोहर की टाँग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई। वह क्रमशः फिर अपनी हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह हो आने पर उन्होंने पूछा– ''मनोहर कैसा है?''

रामजीदास ने उत्तर दिया– ''अच्छा है।''

रामेश्वरी– ''उसे मेरे पास लाओ।''

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे प्यार से हृदय से लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों के बाद पूर्ण स्वस्थ हो गई। अब वह मनोहर की बहन चुन्नी से भी द्वेष और घृणा नहीं करतीं और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी चैन नहीं पड़ती।

शब्दार्थ–

चुहुल– मजाक,	आढ़त– थोक व्यापार,	अमानुषिक– अमानवीय,
ओटे जाना– कहे जाना,	पोच–कमजोर,	सुकृति– सद्कार्य,
ममत्व–ममता,	अन्तर्निहित– छिपा हुआ,	चेष्टा–इच्छा,
उत्तेजित–क्रोधित,	विद्यमान– मौजूद,	प्रस्फुटित– निकलना,
द्वेष– दुर्भावना	तृष्णा– लालसा,	तीक्ष्ण– तेज,
कुढ़कर– चिढ़कर,	वृथा– व्यर्थ,	कर्कश– कठोर वाणी,
अप्रतिभ– मूक, उत्तर रहित।		

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. पति को बच्चों में मगन होते देखकर उनकी भवें तन गईं। किसकी भवें तन गईं–
   (क) बाबू साहब (ख) मनोहर की माँ
   (ग) रामेश्वरी की (घ) इनमे से कोई नहीं ( )
2. रामेश्वरी के मन में एक अभाव हमेशा खटकता था। वह क्या था–
   (क) धन का (ख) संतान का
   (ग) घर का (घ) पति का ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. ताऊजी हमें लेलगाड़ी (रेलगाड़ी) ला दोगे। यह किसने और किससे कहा ?
2. एक बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। बाबू साहब के हृदय का कोमल भाव क्या था ?

3. कहानी में बाबू साहब का पूरा नाम क्या है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. ताई कहानी के शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।
2. किस घटना से रामेश्वरी का हृदय परिवर्तन हुआ ? स्पष्ट कीजिए।
3. बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। ऐसा क्यों हुआ और उन्होंने क्या जबाब दिया ?
4. कभी–कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिल्कुल ही अमानुषिक हो उठता है। यह पंक्ति किसने कही और क्यों कही ?
5. ताई कहानी से आपको क्या प्रेरणा मिलती है ?

निबंधात्मक प्रश्न–

1. ताई कहानी की कथा वस्तु का सार लिखकर उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. कहानी के आधार पर रामेश्वरी का चरित्र–चित्रण कीजिए।
3. कहानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।
4. 'ताई कहानी के आधार पर बाबू रामजीदास की चरित्रगत विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

*****

एटम बम

–अमृतलाल नागर

लेखक–परिचय

कहानी व उपन्यासकार अमृतलाल नागर का जन्म सन् 1916 ई. में एक गुजराती नागर परिवार में हुआ। अल्पायु में ही इन पर परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ आ पड़ीं जिसके कारण ये नियमित शिक्षण प्राप्त नहीं कर सके, परन्तु जीवन के अनुभवों से इन्होंने खूब सीखा। लोक–नाट्य, पुरातत्व, विभिन्न बोलियाँ और भाषाएँ इनकी रुचि के विशेष विषय रहे हैं। 'उच्छृंखल', 'चकल्लस', 'सनीचर' आदि कई हास्य रस के मासिक–पाक्षिक–साप्ताहिक पत्र पत्रिकाओं के ये सम्पादक भी रहे। नौकरी इनके लेखन में बाधा लगने लगी तो नागर जी ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और लेखन की ओर प्रवृत्त हुये।

अमृतलाल नागर प्रगतिशील विचारों के साहित्यकार है। कहानियों के अतिरिक्त–उपन्यास, नाटक, फिल्म सिनेरियों, पेरोड़ी आदि लिखकर इन्होंने माँ भारती के भंडार को समृद्ध बनाया। 'महाकाल', 'ये कोठे वालियाँ', 'बूंद और समुद्र', 'सुहाग के नूपुर' तथा 'शतरंज के मोहरे' इनके प्रसिद्ध उपन्यास है। इनके नवीनतम उपन्यास 'अमृत और विष' पर साहित्य अकादमी ने पुरस्कार देकर इन्हें सम्मानित किया है। 'एक दिन हजार दास्तां', 'एटम बम', 'पीपल की परी', 'वाटिका', 'अवशेष', 'नवाबी मसनद', 'तुलाराम शास्त्री' आदि इनके प्रसिद्ध कहानी–संग्रह है। नागर जी बंगला, मराठी और तमिल भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं। इनसे सम्बन्धित कई हिन्दी अनुवाद भी नागर जी की साहित्य–सेवा के विशिष्ट अंग है।

पाठ–परिचय

'एटम बम' कहानी विज्ञान, युद्ध और शान्ति की त्रिवेणी पर आधारित मानवता के परिप्रेक्ष्य में समझने–परखने की कहानी है। आज विश्व का प्रत्येक मानव विज्ञान की उपलब्धियों को आशंका की दृष्टि से देखने लगा है क्योंकि विज्ञान के नित–नवीन आविष्कार मानव के लिए फूल की तरह जीवन को सौरभ ताजगी और प्रसन्नता देने वाला कम और वज्र की भाँति पीड़ाकारी और निर्मम अधिक हैं। युद्ध का अनिवार्य कारक बनकर वह मानवता को नष्ट करने पर उतारू है। जीवन की ममता और करूणा के स्त्रोत संकटग्रस्त हैं। इन्हीं संवेदनाओं को नागर जी ने कोबायाशी के अनुभूतिप्रवण हृदय द्वारा बार–बार उभारने का प्रयत्न किया है।

कहानी की पृष्ठभूमि द्वितीय विश्व युद्ध की वह विध्वंसकारी लीला है जिसमें हिरोशिमा और नागासाकी के लाखों निर्दोष प्राणियों का जीवन होम हो गया।

कहानी का अन्त आस्था और जीवन–शक्ति को वेग देने वाला है। नर्स के ये शब्द, 'एटम की शक्ति से हार कर क्या हम इन्सान और इन्सानियत को मरते देखते रहेंगे? विज्ञान की ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों

पर मानव की अदम्य प्राण–चेतना, असीम निर्माण शक्ति, अडिग आत्म–विश्वास और करुण भावना के विजय–चिन्ह हैं।

****   ****

चेतना लौटने लगी। साँस में गंधक की तरह तेज बदबूदार और दम घुटाने वाली हवा भरी हुई थी। कोबायाशी ने महसूस किया कि बम के उस घातक धड़ाके की गूँज अभी भी उसके दिल में धँस रही है। भय अभी भी उस पर छाया हुआ है। उसका दिल जोर–जोर से धड़क रहा है। उसे साँस लेने में तकलीफ होती है, उसकी साँस बहुत भारी और धीमी चल रही है।

हारे हुये कोबायाशी का जर्जर मन इन दोनों अनुभवों से खीझकर कराह उठा। उसका दिल फिर गफलत में डूबने लगा। होश में आने के बाद, मृत्यु के पंजे से छूट कर निकल जाने पर जो जीवनदायिनी स्फूर्ति और शान्ति उसे मिलनी चाहिये थी, उसके विपरीत यह अनुभव होने से ऊबकर, तन और मन की सारी कमजोरी के साथ वह चिढ़ उठा। जीवन कोबायाशी के शरीर में अपने अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए विद्रोह करने लगा। उसमें बल का संचार हुआ।

कोबायाशी ने आँखें खोली। गहरे कुहासे की तरह दम घुटने वाला जहरीला धुआँ हर तरफ छाया हुआ था। उसके स्पर्श से कोबायाशी को अपने रोम–रोम में हजारों सुइयाँ चुभने का–सा अनुभव हो रहा था। रोम–रोम से चिनगारियाँ छूट रही थीं। उसकी आँखों में भी जलन होने लगी, पानी आ गया। कोबायाशी ने घबराकर आँखें मींच लीं।

लेकिन आँखें बन्द कर लेने से तो और भी ज्यादा दम घुटता है। कोबायाशी के प्राण घबरा उठे। वे कहीं भी सुरक्षित न थे। मौत अँधेरे की तरह उस पर छाने लगी। यह हीनावस्था की पराकाष्ठा थी। कोबायाशी की आत्मा रो उठी। हारकर उसने फिर अपनी आँखें खोल दीं। हठ के साथ वह उन्हें खोले ही रहा। जहरीला धुआँ लाल मिर्च के पाउडर की तरह उसकी आँखों में भर रहा था। लाख तकलीफ हो; मगर वह दुनियाँ को कम से कम देख तो रहा है। बम गिरने के बाद भी दुनियाँ अभी नेस्तनाबूद नहीं हुई आँखें खुली रहने पर यह तसल्ली तो उसे हो रही है। गर्दन घुमाकर उसने हिरोशिमा की धरती को देखा, जिस पर वह पड़ा हुआ था। धरती के लिए उसके मन में ममत्व जाग उठा। कमजोर हाथ आप ही आप आगे बढ़कर अपने नगर की मिट्टी को स्पर्श करने का सुख अनुभव करने लगे।

.... मन कहीं खोया। अपने अन्दर उसे किसी जबरदस्त कमी का एहसास हुआ। यह एहसास बढ़ता ही गया। आन्तरिक हृदय से सुख का अनुभव करते ही कल्पना दुःख की ओर प्रेरित हुई। स्मृति झकोले खाने लगी।

चेतन–बुद्धि पर छाये हुये भय से बचने के लिए अन्तर–चेतना की किसी बात पर विस्मृति का मोटा पर्दा पड़ रहा था। मौत के चंगुल से छूटकर निकल आने पर, पार्थिवता की बोझ–स्वरूप धरती के स्पर्श से जीवन को स्पर्श करने का सुख उसे प्राप्त हुआ था। परन्तु भावना उत्पन्न होते ही उसके सुख में घुन लग गये। भय ने नींवें डगमगा दीं। अपनी अनास्था को दबाने के लिए वह बार–बार जमीन छूता था। अन्तर के अविश्वास को चमत्कार का रूप देते हुये, इस खुली जगह में पड़े रहने के बावजूद अपने जीवित बच जाने के बारे में उसे भगवान की लीला दिखाई देने लगी।

करुणा सोते की तरह दिल से फूट निकली। पराजय के आँसू इस तरह अपना रूप बदल कर दिल में घुमेड़े ले रहे थे। जहरीले धुएँ के कारण आँखों में भरे हुये पानी के साथ–साथ वे आँसू भी घुल–मिलकर गाल से ढुलकते हुये जमीन पर टपकने लगे।

बेहोश होने के कुछ मिनट पहले उसने जिस प्रलय को देखा था, उसकी विकरालता अपने पूरे वजन के साथ कोबायाशी की स्मृति पर आघात करके उसके टुकड़े–टुकड़े कर रही थी। वह ठीक–ठीक सोच नहीं पा रहा था कि जो दृश्य उसने देखा, वह सत्य था क्या? .... धड़ाका! जड़ी बुखार की कँपकँपी की तरह जमीन काँप उठी थी। बम था– दुश्मनों का हवाई हमला। हजारों लोग अपने प्राणों की पूरी शक्ति लगा कर चीख उठे थे। .... कहाँ है वे लोग? वो प्राणान्तक चीखें, वह आर्तनाद जो बम के धड़ाके से भी ऊँचा उठ रहा था। वह इस समय कहाँ है? खुद वह इस समय कहाँ है? और ....

कुछ खो देने का अहसास फिर हुआ। कोबायाशी विचलित हुआ। उसने कराहते हुए करवट बदल कर उठने की कोशिश की, लेकिन उसमें हिलने की भी ताब न थी। उसने फिर अपनी गर्दन जमीन पर डाल दी। हवा में काले–काले जर्रे भरे हुये थे। धुआँ, गर्मी, जलन, प्यास– उसका हलक सूखा जा रहा था। बेचैनी बढ़ रही थी। वह उठना चाहता था। उठकर वह चारों तरफ देखना चाहता था! क्या ? यह अस्पष्ट था। उसके दिमाग में एक दुनियाँ चक्कर काट रही थी। नगर, इमारतें, जन–समूह से भरी हुई सड़कें, आती–जाती सवारियाँ, मोटरें, गाडियाँ, साइकिलें .... और .... दिमाग इन सभी में खोया हुआ कुछ ढूँढ रहा था; अटका, मगर फौरन ही बढ़ गया। जीवन के पच्चीस वर्ष जिस वातावरण से आत्मवत् परिचित और घनिष्ट रहे थे, वह उसके दिमाग की स्क्रीन पर चलती–फिरती तस्वीरों की तरह प्रकट हो रहा था। लेकिन सब कुछ अस्पष्ट, मिटा–मिटा सा! कल्पना में वे चित्र बड़ी तेजी के साथ झलक दिखाकर बिखर जाते थे। इससे कोबायाशी का मन और भी उद्विग्न हो उठा।

प्यास बढ़ रही थी। हलक में काँटे पड़ गये। और उसमें उठने की ताब न थी। एक बूँद पानी के लिये जिन्दगी देह को छोड़कर चले जाने की धमकी दे रही थी, और शरीर फिर नहीं उठ पाता था। कोबायाशी को इस वक्त मौत ही भली लगी। बड़े दर्द के साथ उसने आँखें बन्द कर लीं।

मगर मौत न आयी।

कोबायाशी सोच रहा था। ''मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया था जिसकी यह सजा मुझे मिल रही है? अमीरों और अफसरों को छोड़कर कौन ऐसा आदमी था जो यह लड़ाई चाहता था? दुनियाँ अगर दुश्मनी निकालती, तो उन लोगों से। हमने उनका क्या बिगाडा था? हमें क्यों मारा गया? .... प्यास लग रही है। पानी न मिलेगा। ऐसी बुरी मौत मुझे क्यों मिल रही है ? ईश्वर! मैनें ऐसा क्या अपराध किया था?''

करुणासागर ईश्वर कोबायाशी के दिल में उमड़ने लगा। आँखों से गंगा–जमुना बहने लगी। सबसे बड़े मुंसिफ के हुजूर में लाठी और भैंस वाले न्याय के विरुद्ध वह रो–रोकर फरियाद कर रहा था। आँसू हलकान किये दे रहे थे। लम्बी–लम्बी हिचकियाँ बँध रही थीं, जिनसे पसलियों को और सारे शरीर को बार–बार झटके लग रहे थे। इस तरह रोने से दम घोंटने वाला जहरीला धुआँ जल्दी–जल्दी पेट में जाता था। उसका जी मिचलाने लगा। उसके प्राण अटकने लगे।

प्राणों के भय से एक लम्बी हिचकी को रोकते हुये जो साँस खींची तो कई पल तक वह उसे अन्दर ही रोके रहा फिर सुबकियों में वह धीरे–धीरे टूटी। रो भी नहीं सकता। कोबायाशी की आँखों में फिर पानी भर आया। कमजोर हाथ उठाकर उसने बेजान–सी उँगलियों से आँसू पौंछे।

आँखों के पानी से उँगलियों के दो पोर गीले हुये, उतनी जगह में तरावट आयी। कोबायाशी की काँटों में पड़ी जबान और हलक को फिर से तरावट की तलब हुई। प्यास बगूले–सी फिर भड़क उठी। हठात् उसने अपनी आँसुओं से नम उँगलियाँ जबान से चाट लीं। दो उँगलियों के बीच में बिखरी हुई

आँसुओं की एक बूँद, उसकी जबान का जायका बदल गया और उसे पछतावा होने लगा– इतनी देर रोया, मगर बेकार ही गया। उसकी फिर से रोने की तबीयत होने लगी, मगर आँसू अब न निकलते थे। कोबायाशी के दोनों हाथों में ताकत आ गयी। नम आँखों से लेकर गीले गालों के पीछे कनपटियों तक आँसू की एक बूँद जुटा कर अपनी प्यास बुझाने के लिए वह उँगलियाँ दौड़ाने लगा। आँसू खुश्क हो चले थे, और कोबायाशी की प्यास दम तोड़ रही थी।

चक्कर आने लगे। गफलत फिर बढ़ने लगी। बराबर सुन्न पड़ते जाने की चेतना अपनी हार पर बुरी तरह से चिढ़ उठी और उसकी चिढ़ विद्रोह में बदलती गयी। गुस्सा शक्ति बनकर उसके शरीर में दमकने लगा– काबू से बाहर होने लगा। माथे की नसें तड़कने लगी। वह एक–दम अपने काबू से बाहर हो गया। दोनों हाथ टेक कर उसने बड़े जोर के साथ उठने की कोशिश की। वह कुछ उठा भी। कमजोरी की वजह से माथे में फिर मूर्छा आने लगी। उसने संभाला– मन भी, तन भी। दोनों हाथ मजबूती से जमीन पर टेके रहा। हाँफते हुये मुँह से एक लम्बी साँस ली, और अपनी भुजाओं के बल पर घिसटकर कुछ और उठा। पीठ लगी तो घूमकर देखा–पीछे दीवार थी। उसने जिन्दगी की एक और निशानी देखी। कोबायाशी का हौंसला बढ़ा। मौत को पहली शिकस्त देकर पुरुषार्थ ने गर्व का बोध किया। परन्तु पीड़ा और जड़ता का जोर अभी भी कुछ कम न था। फिर भी उसे शान्ति मिली। दीवार की तरफ देखते ही ध्यान बदला। सिर उठाकर ऊँचे देखा, दीवार टूट गयी थी। उसे आश्चर्यमय प्रसन्नता हुई। दीवार से टूटा हुआ मलवा दूसरी तरफ गिरा था। भगवान ने उसकी कैसी रक्षा की। जीवन के प्रति फिर से आस्था उत्पन्न होने लगी। टूटी हुई दीवार की ऊँचाई के साथ–साथ उसका ध्यान और ऊँचा गया कि यह तो अस्पताल की दीवार है। अभी–अभी वह अपनी पत्नी को भर्ती कराके बाहर निकला था। सवेरे से उसे दर्द उठ रहे थे, नयी जिन्दगी आने को थी। पत्नी जिसे बच्चा होने वाला था.......... डॉक्टर, नर्स, मरीजों के पलंग .... डॉक्टर ने उससे कहा था– ''बाहर जाकर इन्तजार करो।'' वह फिर बाहर जाकर अस्पताल के नीचे ही कंकड़ों की कच्ची सड़क पर सिगरेट पीते हुए टहलने लगा था। आज उसने काम से छुट्टी ले रखी थी। वह बहुत खुश था– जब अचानक आसमान पर कानों के पर्दे फाड़ने वाला धमाका हुआ था। अंधा बना देने वाली तीव्र प्रकाश की किरणें कहीं से फटकर चारों तरफ बिखर गईं। पलक मारते ही काले धुँए की मोटी चादर बादलों से घिरे हुये आसमान पर तेजी से बिछती चली गयी। काले धुएँ की बरसात होने लगी। चमकते हुये विद्युत्कण सारे वातावरण में फैल गये थे। सारा शरीर झुलस गया; दम घुटने लगा था। सैंकड़ों चीखें एक साथ सुनाई दी थीं। इस अस्पताल से भी आयी होगी। दीवार उसी तरफ गिरी है और उन चीखों में उसकी पत्नी की चीख भी जरूर शामिल रही होगी........... कोबायाशी का दिल तड़प उठा। उसे अपनी पत्नी को देखने की तीव्र उत्कण्ठा हुई।

होश में आने के बाद पहली बार कोबायाशी को अपनी पत्नी का ध्यान आया था। बहुत देर से जिसकी स्मृति खोई हुई थी, उसे पाकर कोबायाशी को एक पल के लिए राहत हुई। इससे उसकी उत्कण्ठा का वेग और भी तीव्र हो गया।

साल भर पहले उसने विवाह किया था। एक वर्ष का यह सुख उसके जीवन की अमूल्य निधि बन गया था। दुःख, यातना और संघर्ष के पिछले चौबीस वर्षों के मरुस्थल से जीवन में आज की यह महायंत्रणा जुड़कर सुख शान्ति के एक वर्ष को पानी की एक बूँद की तरह सोख गयी थी।

बचपन में ही उसके माँ–बाप मर गये थे। एक छोटा भाई था जिसके भरण–पोषण के लिये कोबायाशी को दस वर्ष की उम्र में ही बुजुर्गों की तरह मर्द बनना पड़ा था। दिन और रात जी तोड़कर मेहनत–मजदूरी की, उसे शहजादे की तरह पाल–पोसकर बड़ा किया। तीन बरस हुये, वह फौज में भरती

होकर चीन की लड़ाई पर चला गया और फिर कभी न लौटा।

अपने भाई को खोकर कोबायाशी जिन्दगी से ऊब गया था। जीवन से लड़ने के लिए उसे कहीं से प्रेरणा नहीं मिलती थी। वह निराश हो चुका था। बेवा मकान–मालकिन की लड़की उसके जीवन में नया रस ले आयी। उनका विवाह हुआ। .... और आज उसके घर में एक नयी जिन्दगी आने वाली थी। आज सवेरे से ही वह बड़े जोश में था। उसके सारे जोश और उल्लास पर यह गाज गिरी। जहरीले धुएँ की तपिश ने उसके अन्तर तक को भून दिया था। वेदना असह्य हो गयी थी–और चेतना लुप्त हो गई।

अपनी पत्नी से मिलने के लिए कोबायाशी सब खोकर तड़प रहा था। वह जैसे बच गया वैसे ही भगवान ने शायद उसे भी बचा लिया हो। लेकिन दीवार तो इधर गिरी है! .... ''नहीं!''

.... कोबायाशी चीख उठा। होश में आने के बाद पहली बार उसका कण्ठ फूटा था। सारे शरीर में उत्तेजना की एक लहर दौड़ गयी। स्वर की तेजी से उसके सूखे हुये निष्प्राण कंठ में खराश पैदा हुई। प्यास फिर होश में आयी। कोबायाशी के लिये बैठा रहना असह्य हो गया। अन्दरूनी जोश का दौरा कमजोर शरीर को झिंझोड़कर उठाने लगा। दीवार का सहारा देकर वह अपने पागल जोश के साथ तेजी से उठा। वह दौड़ना चाहता था। दिमाग में दौड़ने की तेजी लिये हुए, कमजोर और डगमगाते हुये पैरों से वह धीरे–धीरे अस्पताल के फाटक की तरफ बढ़ा।

फाटक टूटकर गिर चुका था। अन्दर तलवा–मिट्टी जमीन की सतह से आ पड़ा था। कुछ नहीं–वीरान। जैसे यहाँ कभी कुछ बना ही न था। मिट्टी और खण्डहर। दूर–दूर तक वीरान–खाली। उसकी दुनियाँ नहीं है। वह दुनियाँ जो उसने पच्चीस बरसों से देखी समझी और बरती थी, आज उसे कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती। सपने की तरह वह काफूर हो चुकी है।

मीलों तक फैली हुई वीरानी को देखकर वह अपने को भूल गया अपनी पत्नी को भूल गया। इस महाविनाश में विराट शून्य को देखकर उसका अपनापन उसी में विलीन हो गया। उसकी शक्ति उस महाशून्य में लय हो गयी। जीवन के विपरीत यह अनास्था उसे चिढ़ाने लगी। टूटी दीवार का सहारा छोड़कर वह बेतहाशा दौड़ पड़ा। वह जोर–जोर से चीख रहा था–''मुझे क्यों मारा? मुझे क्यों मारा?'' –मीलों तक उजड़े हुये हिरोशिमा नगर के इस खण्डहर में लाखों निर्दोष प्राणियों की आत्मा बनकर पागल कोबायाशी चीख रहा था–''मुझे क्यों मारा? मुझे क्यों मारा?''

कैम्प अस्पताल में हजारों जख्मी और पागल लाये जा रहे थे। डॉक्टरों को फुर्सत नहीं, नर्सों को आराम नहीं, लेकिन इलाज कुछ भी नहीं हो रहा था। क्या इलाज करें? चारों ओर चीख–चिल्लाहट, दर्द और यंत्रणा का हंगामा! ''गोरा दुश्मन! खुदा–दुश्मन! बादशाह–दुश्मन!'' पागलपन के उस शोर में हर तरफ अपने लिये दर्द था, अपने परिवार और बच्चों के लिये सवाल था, जिसकी यह सजा उन्हें मिली है और दुश्मनों के लिए नफरत थी, जिन्होंने बिना किसी अपराध के उनकी जान ली।

अस्पताल के बरामदे में एक मरीज दहन फाड़कर चिल्ला उठा–''मुझे क्यों मारा? मुझे क्यों मारा?''

अस्पताल के इन्चार्ज डॉक्टर सुजुकी इन तमाम आवाजों के बीच में खोये हुये खड़े थे। वह हार चुके थे। कल से उन्हें नींद नहीं, आराम नहीं, भूख–प्यास नहीं। ये पागलों का शोर, दर्द, चीख, कराह। उनका दिल, दिमाग और जिस्म थक चुका था। अभी थोड़ी देर पहले उन्हें खबर मिली थी। नागासाकी पर भी एटम बम गिराया गया। वे इससे चिढ़ उठे थे। क्यों नहीं, बादशाह और वजीर हार मान लेते ? क्या अपनी झूठी शान के लिये वे जापान को तबाह कर देंगे ?

उन्हें दुश्मनों पर भी गुस्सा आ रहा था; इन्हें क्यों मारा गया ? ये किसी के दुश्मन नहीं थे। इन्हें

अपने लिये साम्राज्य की चाह न थी। अगर इनका अपराध है तो केवल यही कि ये अपने बादशाह के मजबूरन बनाये हुये गुलाम है, व्यक्ति की सत्ता के शिकार हैं। संस्कारों के गुलाम हैं। ...... दुश्मन इन्हें मार कर खुश हैं। जापान की निर्दोष और मूक जनता ने दुश्मनों का क्या बिगाड़ा था जो उन पर एटम बम बरसाये गये ? विज्ञान की नई खोज की शक्ति अजमाने के लिये उन्हें लाखों बेजबान बेगुनाहों की जान लेने का क्या अधिकार था ? क्या यह धर्म युद्ध है ?– सदादर्शों के लिये लड़ाई हो रही है ? एटम का विनाशकारी प्रयोग विश्व को स्वतन्त्र करने की योजना नहीं, उसे गुलाम बनाने की जिद है। ऐसी जिद है जो इन्सान को तबाह करके छोड़ेगी। .... और इन्सानियत के दुश्मन कहते हैं' कि एटम का आविष्कार मानव–बुद्धि की सबसे बड़ी सफलता है।

नर्स आयी। उसने कहा– ''डॉक्टर, सेन्टर से खबर आयी है और नये मरीज भेजे जा रहे हैं।''

डॉक्टर सुजुकी के थके चेहरे पर सनक भरी सूखी हँसी दिखाई दी उन्होंने जवाब दिया– ''इन नये मरीजों के लिए नयी जिन्दगी कहाँ से लाऊँगा, नर्स ? विनाश–लोलुप स्वार्थी मनुष्य, शक्ति का प्रयोग भी नष्ट करने के लिए ही कर रहा है; फिर निर्माण का दूसरा जरिया ही क्या रहा ? फैंक दो उन जिन्दा लाशों को, हिरोशिमा की वीरान धरती पर–या तो उन्हें जहर दे दो। अस्पताल और डॉक्टरों का दुनिया में अब कोई काम नहीं रहा।''

नर्स के पास इन फिजूल बातों के लिए समय नहीं था। –नये मरीज आ रहे हैं, सैंकड़ो अस्पताल में पड़े हैं। वह डॉक्टर पर झुंझला उठी–''यह वक्त इन बातों का नहीं है डॉक्टर! हमें जिन्दगी को बचाना है। यह हमारा पेशा है, फर्ज़ है। एटम की शक्ति से हारकर क्या हम इन्सान की इन्सानियत को मरते हुए देखते रहेंगे? चलिये, आइये, मरीजों को इंजेक्शन लगाना है। आगे का काम करना है।

नर्स, डॉक्टर सुजुकी का हाथ पकड़कर तेजी से आगे बढ़ गयी।

शब्दार्थ–

पराकाष्टा– चरम सीमा,	सोते–झरने,	आघात–चोट,	जर्रे– कण,
आर्तनाद– दुःख भरा स्वर,	हलक–गला,	उद्विग्न–व्याकुल,	तलब–इच्छा,
जायका–स्वाद,	गफलत–चेत या सुध का अभाव,		उत्कण्ठा–इच्छा,
विराट–विशाल,	लय–विलीन,	मूक–गूँगा,	तबाह–बर्बाद,
पेशा–रोजगार,	फर्ज़–कर्तव्य।		

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. 'मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?' वह जोर–जोर से चीख रहा था। वह कौन था–
   (क) नर्स (ख) सुजुकी
   (ग) कोबायाशी (घ) कोई नहीं ( )
3. 'एटम बम' किस शहर पर गिराया गया था–
   (क) हिरोशिमा (ख) नागासाकी
   (ग) क व ख दोनों (घ) टोक्यो ( )
4. ''यह वक्त इन बातों का नहीं है........ हमें जिन्दगी को बचाना यह हमारा पेशा है, फर्ज़ है।'' यह किसने कहा–
   (क) नर्स ने (ख) डॉक्टर ने

(ग) कोबायाशी ने (घ) मरीज ने ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. 'एटम बम' कहानी का मुख्य पात्र कौन है ?
2. कोबायाशी हठ के साथ अपनी आँखें क्यों खोले रहा ?
3. अस्पताल के इंचार्ज डॉक्टर का क्या नाम था? वे क्यों हार चुके थे ?
4. कोबायाशी ने शहजादे की तरह पाल पोस कर किसे बड़ा किया ?
5. कोबायाशी ने अपनी प्यास बुझाने के लिए क्या किया ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. चेतना लौटने के बाद कोबायाशी ने अपने चारों ओर किस प्रकार का वातावरण देखा ?
2. युद्ध के संबंध में कोबायाशी के विचार लिखिए।
3. सुजुकी ने युद्ध के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए क्या कहा ?
4. अस्पताल की ध्वस्त दीवार के साथ कोबायाशी की कौनसी स्मृति जुड़ी थी ?
5. 'एटम बम' कहानी का उद्देश्य क्या है ?

निबंधात्मक प्रश्न–

1. 'हिरोशिमा दिवस' पर आप एक युद्ध विरोधी सभा की अध्यक्षता करते हुए किन विचारों को प्रकट करेंगे?
2. कहानी के आधार पर कोबायाशी का जीवन वृत्तान्त लिखिए।
3. कहानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।

*****

जैसलमेर की राजकुमारी

–आचार्य चतुरसेन शास्त्री

लेखक–परिचय

यशस्वी साहित्यकार होने के अतिरिक्त आचार्य चतुरसेन शास्त्री एक लब्धप्रतिष्ठ वैद्य भी थे। कहानी, उपन्यास, नाटक, गद्यकाव्य उन्होंने लिखे। संस्कृत साहित्य का उनका अध्ययन बहुत गहन तथा सघन था। पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारों में निःसन्देह उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न विषयों पर उनकी कोई डेढ़–सौ से ऊपर रचनाएँ प्रकाशित रूप में प्राप्त हैं।

उपन्यासों में 'वैशाली की नगरवधू', 'सोमनाथ', 'वयं रक्षामः' व 'गोली' तथा कहानी–संग्रहों में 'नवाब ननकू', 'लम्बग्रीव' आदि आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

विषय–वस्तु की दृष्टि से शास्त्री जी ने मुगल–कालीन इतिहास का विशेष रूप से अध्ययन किया था और उस युग के जीवन–वृत्त से कई रोचक और मार्मिक प्रसंग चुनकर उन्हें अपनी मर्मज्ञता का प्रसाद दिया था। आपकी रचनाओं में अद्‌भुत प्रवाह, वर्णन की मनोहारी सजीवता तथा भाषा का अनूठा लालित्य मिलता है।

पाठ–परिचय

राजस्थान के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का भी आपने निकट से अध्ययन किया था। उधर राजस्थान के ऐतिहासिक आख्यानों से तो आपने अपनी कृतियों के लिए प्रचुर प्रेरणा प्राप्त की ही थी। 'जैसलमेर की राजकुमारी' ऐसी ही एक प्रेरणा की सृष्टि है।

**** ****

राजकुमारी ने हँसकर कहा– 'पिताजी, दुर्ग की चिन्ता न कीजिये। जब तक उसका एक भी पत्थर–पत्थर से मिला है, उसकी रक्षा मैं करूँगी। अलाउद्दीन कितनी ही वीरता से हमारे दुर्ग पर आक्रमण क्यों न करे, आप निर्भय होकर शत्रु से लोहा लें।'

यह जैसलमेर के राठौड़ दुर्गाधिपति महाराव रत्नसिंह की कन्या थी। इस समय बलिष्ठ अरबी घोड़े पर चढी हुई थी और मर्दानी पोशाक पहने थी। उसकी कमर में दो तलवारें लटक रही थीं। कमरबन्द में पेशकब्ज, पीठ पर तरकस और हाथ में धनुष था। वह चपल घोड़े की रास को बलपूर्वक खींच रही थी, जो एक क्षण भी स्थिर रहना नहीं चाहता था। रत्नसिंह जरहबख्तर पहने एक हाथी के फौलादी हौदे पर बैठे आक्रमण के लिए प्रस्थान कर रहे थे। सामने राजपूत सवार नंगी तलवारें लिये मैदान में खड़े थे।

उनके घोड़े हिनहिना रहे थे और शस्त्र झनझना रहे थे।

रत्नसिंह ने पुत्री के कन्धे पर हाथ रखकर कहा– ''बेटी, तुझसे मुझे ऐसी ही आशा है। मैंने तुझे पुत्री नहीं– पुत्र की भाँति पाला और शिक्षा दी है। मैं दुर्ग को तुझे सौप कर निश्चिन्त हो रहा हूँ। सावधान रहना! शत्रु वीर ही नहीं, धूर्त्त और छलिया है।''

बालिका ने वक्रदृष्टि से पिता को देखा और हँसकर कहा– ''नहीं, पिताजी! आप निश्चिन्त होकर प्रस्थान करें।''

रत्नसिंह ने एक तीव्र दृष्टि अपने किले के धूप से चमकते हुए कँगूरों पर डाली और हाथी बढ़ाया। गगनभेदी जय–निनाद से धरती–आसमान काँप उठे। एक विशालकाय अजगर की भाँति सेना किले के फाटक से निकलकर पर्वत की उपत्यका में विलीन हो गयी। इसके बाद घोर चीत्कार करके दुर्ग का फाटक बन्द हो गया। टिड्डीदल की भाँति शत्रु ने दुर्ग को घेर रखा था। सब प्रकार की रसद बाहर से आनी बन्द थी। प्रतिदिन शत्रु गोलियों और तीरों की वर्षा करता था; पर जैसलमेर का अजेय दुर्ग गर्व से मस्तक उठाये खड़ा था। शत्रु समझ गये थे कि दुर्ग विजय करना हँसी–ठट्ठा नहीं है। दुर्ग–रक्षिणी राजनन्दिनी रत्नवती निर्भय अपने दुर्ग में सुरक्षित बैठी शत्रुओं के दाँत खट्टे कर रही थी। उसकी अधीनता में पुराने विश्वस्त राजपूत वीर थे, जो मृत्यु और जीवन को खेल समझते थे। वह अपनी सखियों समेत दुर्ग के किसी बुर्ज पर चढ़ जाती और शत्रु–सेना का ठट्ठा उड़ाती हुई वहाँ से सनसनाते तीरों की वर्षा करती। वह कहती– ''मैं स्त्री हूँ, पर अबला नहीं। मुझ में मर्दों–जैसा साहस और बल है।''

उसकी बातें सुन सहेलियाँ ठह ठहाकर हँस देती थीं। प्रबल शत्रु–दल द्वारा आक्रांत दुर्ग में बैठना राजकुमारी के लिए एक विनोद था।

मलिक काफूर एक गुलाम था जो इस समय शत्रु–सेना का अधिपति था। वह दृढ़ता और शांति से राजकुमारी की चोटें सह रहा था। उसने सोचा था कि जब किले में खाद्य पदार्थ कम हो जायेंगे, दुर्ग वश में आ जायेगा। फिर भी वह समय–समय पर दुर्ग पर आक्रमण कर देता था, परन्तु दुर्ग की चट्टानों और भारी दीवारों को कोई क्षति नहीं पहुँचती थी। राजकुमारी बहुधा बुर्ज पर से कहती– ये धूर्त्त गर्द उड़ा कर गोलियों की वर्षा कर मेरे किले को गन्दा और मैला कर रहे हैं। इससे क्या लाभ ?

शत्रु–दल ने एक बार दुर्ग पर प्रबल आक्रमण किया। राजकुमारी चुपचाप बैठी रही। जब शत्रु आधी दूरी तक दीवारों पर चढ़ आये, तब भारी–भारी पत्थरों के ढोंके और गर्म तेल की वह मार पड़ी कि शत्रु–सेना छिन्न–भिन्न हो गयी। लोगों के मुँह झुलस गये। कितनों की चटनी बन गयी। हजारों शत्रु–सैनिक तौबा–तौबा करके प्राण लेकर भागे। जो प्राचीर तक पहुँचे, उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया।

सूर्य छिप रहा था। प्राची दिशा लाल–लाल हो रही थी। राजकुमारी कुछ चिन्तित भाव से अति दूर पर्वत की उपत्यका में सूर्य को डूबते हुए देख रही थी। उसे चार दिन से पिता का सन्देश नहीं मिला था। वह सोच रही थी कि इस समय पिता को क्या सहायता दी जा सकती है? वह एक बुर्ज के नीचे बैठ गयी। धीरे–धीरे अन्धकार बढ़ने लगा। उसने देखा– एक काली मूर्ति धीरे–धीरे पर्वत की तंग राह से किले की ओर अग्रसर हो रही है। उसने समझा कि पिता का सन्देशवाहक होगा। वह चुपचाप उत्सुक होकर उधर ही देखती रही। उसे आश्चर्य तब हुआ जब उसने देखा कि वह गुप्तद्वार की ओर न जाकर सिंहद्वार की ओर जा रहा है। तब अवश्य शत्रु है। राजकुमारी ने एक तीखा बाण अपने हाथ में लिया और छिपती हुई उस मूर्ति के साथ ही द्वार की पौर के ऊपर आ गयी। वह मूर्ति एक गठरी को पीठ से उतार कर प्राचीर पर चढ़ने का उपाय सोच रही थी। राजकुमारी ने धनुष पर बाण चढ़ा कर ललकार कर कहा–

वहीं खड़ा रह और अपना अभिप्राय बता।

कालरूप राजकुमारी को सम्मुख देख, वह व्यक्ति भयभीत स्वर में बोला– मुझे किले में आने दीजिये, बहुत जरूरी सन्देश है।

''वह सन्देश वहीं से कह।''

''वह अतिशय गोपनीय है।''

''कुछ चिन्ता नहीं, कह।''

''मैं किले में आकर कहूँगा।''

उससे पूर्व यह तीर तेरे कलेजे के पार हो जायेगा।''

''महाराज विपत्ति में हैं। मैं उनका चर हूँ।''

''चिट्ठी हो तो फेंक दे।''

''जबानी कहना है।''

''जल्दी कह।''

''यहाँ से नहीं कह सकता।''

''तब ले।'' इतना कहकर राजकुमारी ने तीर छोड़ दिया। वह उसके कलेजे को पार करता हुआ निकल गया। राजकुमारी ने सीटी दी। दो सैनिक आ हाजिर हुए। कुमारी की आज्ञा पा रस्सी के सहारे उन्होंने नीचे जा, मृत व्यक्ति को देखा– शत्रु था। दूसरा व्यक्ति पीठ पर गठरी में बँधा था। यह देख राजकुमारी जोर से हँस पड़ी। इसके बाद वह प्रत्येक बुर्ज पर घूम–घूम कर प्रबन्ध और पहरे का निरीक्षण करने लगी। पश्चिमी फाटक पर जाकर उसने देखा– द्वार–रक्षक द्वार पर न था। कुमारी ने पुकार कर कहा– यहाँ पहरेदार कौन है?

एक वृद्ध योद्धा ने आगे बढ़कर कुमारी को मुजरा किया। उसने धीरे–धीरे कुमारी के कान में कुछ और भी कहा। वह हँसती–हँसती बोली–'ऐसा, ऐसा? अच्छा, वे तुम्हें घूँस देंगे, बाबा जी साहब?'

'हाँ बेटी!' कहकर बूढ़ा योद्धा तनिक हँस दिया। उसने गाँठ से सोने की पोटली निकाल कर कहा– 'यह देखो, इतना सोना है।'

'अच्छी बात है। ठहरो, हम उन्हें पागल बना देंगे। बाबा जी, तुम आधी रात को उनकी इच्छानुसार द्वार खोल देना।'

वृद्ध भी हँसता और सिर हिलाता हुआ चला गया।

बारह बज गये थे। चाँदनी छिटक रही थी। कुछ आदमी दुर्ग की ओर छिपे–छिपे आ रहे थे। उनका सरदार काफूर था। उसके पीछे सौ चुने हुए योद्धा थे। संकेत पाते ही द्वारपाल ने प्रतिज्ञा पूरी की। विशाल महराबदार फाटक खुल गया। सौ व्यक्ति चुपचाप दुर्ग में घुस गये। काफूर ने मन्द स्वर में कहा– 'यहाँ तक तो ठीक हुआ। अब हमें उस गुप्त मार्ग से दुर्ग के भीतर महलों में पहुँचा दो, जिसका तुमने वादा किया है।'

राजपूत ने कहा– मैं वादे का पक्का हूँ, मगर बाकी सोना तो दो।' सेनापति ने मुहरों की थैली हाथ में रख दी। राजपूत फाटक में ताला बन्द कर चुपचाप प्राचीर की छाया में चला और लोमड़ी की भाँति चक्कर खाकर कहीं गायब हो गया।

सैनिक चक्रव्यूह में फँस गये, न पीछे का रास्ता मिलता था, न आगे का। वे वास्तव में कैद हो गये थे और अपनी मूर्खता पर पछता रहे थे। मलिक काफूर दाँत पीस रहा था। राजकुमारी की सहेलियाँ इतने चूहों को चूहेदानी में फँसाकर हँस रही थीं।

शत्रु–सैन्य ने दुर्ग पर भारी घेरा डाल रखा था। खाद्य–सामग्री धीरे–धीरे कम हो रही थी। घेरे के बीच से किसी का आना अशक्य था। राजपूत भूखे मर रहे थे। राजकुमारी का शरीर पीला हो गया था, उसके अंग शिथिल हो गये थे; पर नेत्रों का तेज वैसा ही था। उसे कैदियों के भोजन की बड़ी चिन्ता थी। किले का प्रत्येक आदमी उसे देवी की भाँति पूजता था। उसने मलिक काफूर के पास जाकर कहा– 'सेनापति, मुझे तुमसे कुछ परामर्श करना है। मैं विवश हो गयी हूँ। दुर्ग में खाद्य–सामग्री बहुत कम रह गयी है और मुझे यह संकोच हो रहा है कि आपकी अतिथि–सेवा कैसे की जाय। अब कल से हम लोग एक मुट्ठी अन्न लेंगे, आप लोगों को दो मुट्ठी उस समय तक मिलेगा जब तक दुर्ग में अन्न रहेगा। आगे ईश्वर मालिक है।'

मलिक काफूर की आँखों में आँसू भर आये। उसने कहा– "राजकुमारी, मुझे यकीन है कि आप बीस किलों की हिफाजत कर सकती हैं।"

"हाँ, यदि मेरे पास हों तो!"

राजकुमारी चली आयी।

अठारह सप्ताह बीत गये। अलाउद्दीन के गुप्तचर ने आकर शाह को कोर्निस की।

"क्या राजकुमारी रत्नवती किला देने को तैयार है?"

"नहीं खुदावन्द, वहाँ किसी तरकीब से रसद पहुँच गयी है। अब नौ महीने पड़े रहने पर भी किला हाथ नहीं आयेगा। फिर शाही फौज के लिए अब किसी तालाब में पानी नहीं है। उधर रत्नसिंह ने मालवे तक शाही सेना को खदेड़ दिया है।"

अलाउद्दीन हत–बुद्धि हो गया और महाराव से सन्धि का प्रस्ताव किया।

सुन्दर प्रभात था। राजकुमारी ने दुर्ग–प्राचीर पर खड़े होकर देखा कि शाही सेना डेरे–डंडे उखाड़ कर जा रही है और महाराव रत्नसिंह अपने सूर्यमुखी झण्डे को फहराते, विजयी राजपूतों के साथ, दुर्ग की ओर आ रहे हैं।

मंगल–कलश सजे थे। बाजे बज रहे थे। दुर्ग में प्रत्येक वीर को पुरस्कार मिल रहा था। मलिक काफूर महाराव की बगल में बैठे थे। महाराव ने कहा– "खाँ साहब, किले में मेरी गैरहाजिरी में आपको असुविधाएँ हुई होंगी, इसके लिए आप माफ करेंगे। युद्ध के नियम कड़े होते हैं। फिर किले पर भारी मुसीबत थी। लड़की अकेली थी। जो बन सका, किया।"

काफूर ने कहा–" महाराज, राजकुमारी तो पूजने लायक है। वे मनुष्य नहीं, फरिश्ता हैं। मैं जन्म–भर उनकी मेहरबानी को नहीं भूल सकता।"

महाराव ने एक बहुमूल्य सरपेच उन्हें दिया और पान का बीड़ा देकर विदा किया। दुर्ग में धौंसा बज रहा था।

शब्दार्थ–

छलिया–कपटी,	वक्रदृष्टि– तिरछी नजर,	प्राची– पूर्व,
उपत्यका– पहाड़ की तलहटी,	पौर–सिरा,	अभिप्राय–उद्देश्य,
चर–सेवक,	रसद–खाद्य सामग्री,	फरिश्ता– देवता,
धौंसा– एक विशेष वाद्ययंत्र,	ढोंके– टुकड़े,	आक्रान्त– भयभीत।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. 'जैसलमेर की राजकुमारी' कहानी है–

(क) सामाजिक (ख) पारिवारिक
(ग) राजनैतिक (घ) ऐतिहासिक ( )

2. शत्रु सेना का सेनापति कौन था–
(क) गुलाम मोहम्मद (ख) मलिक काफूर
(ग) गोस मोहम्मद (घ) मलिक मोहम्मद ( )

3. जैसलमेर की राजकुमारी रत्नवती किसकी कन्या थी–
(क) जयसिंह की (ख) मानसिंह की
(ग) जोरावर सिंह की (घ) महराव रत्नसिंह की ( )

4. जैसलमेर की राजकुमारी के कहानीकार हैं–
(क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (ख) प्रेमचन्द
(ग) आचार्य चतुरसेन (घ) आचार्य हजारी प्रसाद ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. किले का प्रत्येक व्यक्ति राजकुमारी को किसकी तरह पूजता था।
2. रत्नसिंह ने राजकुमारी को सावधान करते हुए शत्रु के सम्बन्ध में क्या कहा ?
3. दूर पर्वत की उपत्यका में डूबते सूर्य को देखकर राजकुमारी चिंतित क्यों हो उठी ?
4. मलिक काफूर ने आँसू भीगी आँखों से राजकुमारी को क्या कहा ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. राजकुमारी ने हँसते हुए राव रत्नसिंह को क्या आश्वासन दिया ?
2. दाँत खट्टे करना मुहावरे का अर्थ बताते हुए वाक्य में प्रयोग कीजिए।
3. शत्रु दल के दुर्ग पर प्रबल आक्रमण कर राजकुमारी ने क्या प्रत्युत्तर दिया ?
4. रात्रि के अंधकार में राजकुमारी ने बुर्ज से नीचे क्या देखा ?

निबंधात्मक प्रश्न–

1. जैसलमेर की राजकुमारी कहानी का कथासार लिखिए।
2. जैसलमेर की राजकुमारी कहानी लेखन के पीछे कहानीकार का उद्देश्य क्या रहा है, लिखिए।
3. राजकुमारी ने सेनापति मलिक काफूर को जाकर क्या कहा ?
4. 'जैसलमेर की राजकुमारी कहानी भारतीय दर्शन को प्रतिबिम्बित करने वाली कथा है।' पठित कहानी के आधार पर समझाइए।
5. पठित कहानी नारी के कुशल प्रबन्धन तथा सूझ बूझ को अभिव्यक्त करती है। अपने विचार व्यक्त कीजिए।

*****